जनवरी–2020
वर्ष–84 । अंक–1
₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक
www.awgp.org

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

विश्व हिंदू शिक्षाविद् संगठन का प्रथम अधिवेशन देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में संपूर्ण विश्व से पधारे प्रतिनिधिगणों की उपस्थिति में संपन्न

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संचालित गोशाला में गोवर्धन महापर्व सोल्लास संपन्न

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं० (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-ajsansthan@awgp.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 84
अंक	: 01
जनवरी	: 2020
पौष-माघ	: 2076
प्रकाशन तिथि	: 01.12.2019

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
भारत में आजीवन (बीसवर्षीय)	: 5000/-

प्रेम

मनुष्य का जीवन प्रेम की फुहारों से सिंचित होता है तो घृणा के उद्वेगों से दूषित। घृणा जीवन का, व्यक्तित्व का कलुष है। घृणा का अर्थ है—दूसरे के विनाश की आकांक्षा, उसके अस्तित्व को नष्ट कर देने की चाहत। प्रेम की परिभाषा उत्सर्ग से तय होती है। उत्सर्ग का अर्थ है—आवश्यकता पड़ने पर दूसरे की रक्षा हेतु स्वयं को होम कर देने का, समर्पित कर देने का भाव और इसके विपरीत घृणा का अर्थ है—आवश्यकता न भी पड़े तो भी स्वयं के लिए, अपने अहंकार की रक्षा के लिए—दूसरे को नष्ट कर देने का भाव।

सामान्य मनुष्यों के जीवन में प्रेम का विस्तार कम, घृणा का अधिकार ज्यादा दिखाई पड़ता है। लोग कहने को प्रेम तो करते हैं, पर यह प्रेम भी या तो घृणा का ही रूप होता है या किसी अन्य दिन घृणा का रूप बन जाता है। जिससे आज लोग प्रेम करते हैं, कल उससे घृणा करने लगते हैं और जो प्रेम घृणा में बदल जाए; समझना चाहिए कि वह प्रारंभ से ही घृणा थी, मात्र प्रेम का मुखौटा लगाकर जी रही थी।

प्रेम मनुष्य के जीवन में तब ही अवतरित होता है, जब मनुष्य सर्वत्र सब प्राणियों में उसी परमात्मा को देखने लगता है और उसी परमात्मा को स्वयं में देखने लगता है, जब अहंकार उसके व दूसरों के बीच की बाधा नहीं रह जाता तभी सच्चा प्रेम जन्म लेता है, तभी घृणा का अंत होता है।

एक व्यक्ति ईसामसीह के पास मिलने गया और उनसे पूछने लगा—"हे प्रभु! आप जिस आनंद की बात करते हैं, क्या वह मुझे मिल सकता है?" ईसामसीह ने उत्तर दिया—"मिल तो सकता है, पर उसके लिए तुम्हें फिर से पैदा होना पड़ेगा।" वह आदमी घबराया, पूछने लगा—"क्या मुझे मरना पड़ेगा?" ईसामसीह बोले—"तुम्हें नहीं! तुम्हारे अहंकार को मरना पड़ेगा। जब वो मरेगा तो तुम्हारा नया जन्म होगा, जो प्रेम का माध्यम बनेगा।" यही नया जन्म भारतीय शास्त्रों में 'द्विज' के नाम से जाना जाता था, जिसका मिलना घृणा के अंत और प्रेम के आरंभ से ही संभव है। ❑

► 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◄

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

शांतिकुंज देव संस्कृति विश्वविद्यालय में लहराता तिरंगा

जनवरी-फरवरी, २०२० के पर्व-त्योहार

वार	तिथि	पर्व
बुधवार	01 जनवरी	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	02 जनवरी	गुरु गोविंद सिंह जयंती
सोमवार	06 जनवरी	पुत्रदा एकादशी
शुक्रवार	10 जनवरी	पूर्णिमा व्रत
रविवार	12 जनवरी	स्वामी विवेकानंद जयंती/ राष्ट्रीय युवक दिवस
मंगलवार	14 जनवरी	मकर संक्रांति
सोमवार	20 जनवरी	षट्तिला एकादशी
गुरुवार	23 जनवरी	नेताजी सुभाष जयंती
शुक्रवार	24 जनवरी	मौनी अमावस्या
रविवार	26 जनवरी	गणतंत्र दिवस
गुरुवार	30 जनवरी	वसंत पंचमी/बोध दिवस/ शहीद दिवस
शुक्रवार	31 जनवरी	सूर्य षष्ठी
बुधवार	05 फरवरी	जया एकादशी
रविवार	09 फरवरी	संत रविदास जयंती/ माघी पूर्णिमा
बुधवार	19 फरवरी	विजया एकादशी
शुक्रवार	21 फरवरी	महाशिवरात्रि
मंगलवार	25 फरवरी	रामकृष्ण परमहंस जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

प्रतिष्ठित विद्याकेंद्रों की भूमि भारत

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही विद्याध्ययन, ज्ञानोपार्जन—मानवीय जीवन की सर्वोपरि आवश्यकताओं में से एक रहा है। विद्या का अर्जन, व्यक्तित्व के विकास का मुख्य सोपान कहा गया है तो विद्या को प्रदान करना आचार्य का प्रमुख कर्त्तव्य बताया गया है। स्मृति में स्मृतिकार यह स्पष्ट आदेश देते हैं कि **'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः'**—अर्थात अध्यापन करना, विद्यार्थी को विद्या प्रदान करना ब्रह्मयज्ञ के समान है। इसीलिए अनादिकाल से यह परंपरा भारतवर्ष में रही कि आचार्यों ने विद्याध्ययन के लिए उपयुक्त आचार्यों को आश्रम-व्यवस्था प्रदान करते हुए गुरुकुलों की स्थापनाएँ कीं। सुरम्य, प्राकृतिक वातावरण में जहाँ दत्तचित्त व एकाग्र होकर ज्ञान का अध्ययन ही नहीं, वरन अनुभव भी संभव हो सके जहाँ विद्यार्थी प्रकृति से वह ज्ञान प्राप्त कर सकें, जो उनके व्यक्तित्व को समग्रता प्रदान करे एवं जहाँ यज्ञादि आध्यात्मिक अनुष्ठान के लिए समुचित व्यवस्था उपलब्ध रहे—ऐसे स्थानों पर ऋषि-मुनियों ने विद्या के केंद्रों की स्थापना की, जो गुरुकुलों के नाम से विख्यात हुए।

आर्ष वाङ्मय में भारत के विभिन्न स्थानों पर इस तरह के गुरुकुलों की स्थापना दरसाई गई है। महाभारतकाल के अनुसार—हिमालय में महर्षि व्यास का गुरुकुल, महेंद्र पर्वत पर ऋषि परशुराम का गुरुकुल, मालिनी नदी के तट पर महर्षि कण्व का गुरुकुल, हरिद्वार में महर्षि भरद्वाज का गुरुकुल, दंडकारण्य में महर्षि अगस्त्य का गुरुकुल, उज्जयिनी में महर्षि सांदीपनि का गुरुकुल तो नैमिषारण्य में महर्षि शौनक का गुरुकुल बताए गए हैं।

कालांतर में इन्हीं गुरुकुलों ने विश्वविद्यालय का स्वरूप प्राप्त कर लिया अन्यथा वैदिककाल में भगवान राम एवं भगवान कृष्ण ने भी महर्षि वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र एवं महर्षि सांदीपनि के गुरुकुलों में विद्यार्जन के कार्य को संपन्न किया था। रामायण के अरण्यकांड में महर्षि वाल्मीकि ने महर्षि अगस्त्य के गुरुकुल की बहुत भारी प्रशंसा भी की है।

समय बीतने के साथ-साथ इन गुरुकुलों का स्वरूप विस्तृत होने लगा और ये विस्तृत विश्वविद्यालयों का आकार लेने लगे। महाभारत में महर्षि शौनक के गुरुकुल में उनको कुलपति कहकर पुकारा जाता था। चूँकि कुलपति शब्द दस हजार से अधिक विद्यार्थियों की संख्या होने पर ही उपयोग में लाया जाता था; अतः ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि महर्षि शौनक के गुरुकुल में दस हजार से ज्यादा विद्यार्थी रहे होंगे। जैसे-जैसे विद्या को ग्रहण करने का क्षेत्र राजा-महाराजाओं के परिवारों के क्षेत्र से हटकर एवं बढ़कर जनसामान्य तक पहुँचने लगा, वैसे-वैसे ये गुरुकुल भी अपने आकार एवं प्रकार में बढ़ते चले गए।

तक्षशिला, एक ऐसा ही विश्वविद्यालय था, जो महाभारतकाल में ही प्रसिद्धि को प्राप्त करने लगा था। एक ही शिला को काटकर बनाए होने के कारण इसका नाम तक्षशिला पड़ा, ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि भरत के पुत्र तक्ष के नाम पर इसका नामकरण हुआ तो कतिपय विशेषज्ञ ऐसा मानते हैं कि प्रसिद्ध नागराज तक्षक का कुलस्थान होने के कारण इसे तक्षशिला नाम दिया गया। नाम की उत्पत्ति कहीं से एवं कैसे भी हुई हो एक बात तो स्पष्ट है कि ज्ञान के क्षेत्र में, मानवता को अद्भुत विरासत इस विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। शास्त्रों का गंभीर अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शतपथ ब्राह्मण में आई आरुणि-उद्दालक की कथा हो अथवा वैशंपायन एवं जनमेजय के मध्य का संवाद हो, श्वेतकेतु का अध्ययन-क्षेत्र हो अथवा कलियुग के प्रथम राजा परीक्षित का राज्याभिषेक—ये सब तक्षशिला में ही घटे थे।

इस विश्वविद्यालय में धौम्य ऋषि के शिष्यों उपमन्यु, आरुणि एवं वेद की शिक्षा-दीक्षा का कार्य संपन्न हुआ था। अपनी अद्भुत भौगोलिक स्थिति के कारण यह भारत ही नहीं, वरन मध्य यूरोप, चीन, तिब्बत, प्राचीन यूनान क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए एक आकर्षण का कारण रहा। इसीलिए तक्षशिला का उल्लेख मात्र रामायण, महाभारत एवं वेदों में

ही नहीं आता, वरन बौद्ध धर्म के जातकों में भी आता है। यहाँ तक कि बौद्ध जातकों में एक संपूर्ण जातक, तक्षशिला जातक के नाम से पुकारा जाता है। जैन धर्म के अनुसार, प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के चरण भी तक्षशिला में पड़े थे, जिसको आदर देने के उद्देश्य से बाहुबलि ने बाद में धर्मचक्र की स्थापना करवाई। ईसा से छह सदी पूर्व पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना की भूमिका यहीं तैयार करनी प्रारंभ की थी तो वहीं चरक एवं चाणक्य, दोनों ही इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी तथा आचार्य भी रहे। जिस विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में वैशंपायन से लेकर चाणक्य और चरक से लेकर पाणिनि के नाम आते हों—उसकी गौरव-गरिमा का अंदाजा लगा पाना भी संभव नहीं है।

जहाँ एक ओर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण तक्षशिला जो आज इस्लामाबाद, पाकिस्तान की राजधानी से 32 किलोमीटर दूरी पर है, को विश्वभर से विद्यार्थी मिला करते थे तो वहीं इसी कारण इस पवित्र विद्यामंदिर को अनेकों बार विदेशी आक्रमणों के प्रहार भी सहने पड़े। मंगोलों से लेकर यूनानियों ने, शकों से लेकर हूणों ने इस पर बारंबार आक्रमण किए। पुरातात्त्विक पर्यवेक्षण में यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि यह महान विद्याभूमि एक नहीं, अनेकों बार उजाड़ी गई और फिर बसी। इसी विश्वविद्यालय में कभी भारत की राष्ट्रीय लिपि रही—ब्राह्मी, विकसित हुई। तक्षशिला की इमारतों के बार-बार ध्वस्त कर दिए जाने के बाद भी उनके दोबारा खड़े हो जाने के पीछे का कारण मुख्यरूपेण यही था कि यहाँ के आचार्य विलक्षण योजना के धनी थे। बौद्ध जातकों के अनुसार तक्षशिला विश्वविद्यालय के एक-एक आचार्य पाँच सौ विद्यार्थियों की संपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण का दायित्व सँभालते थे।

जितना महत्त्व भारतीय इतिहास एवं परंपराओं में तक्षशिला का रहा है—इतना ही महत्त्व नालंदा विश्वविद्यालय का भी कहा जाता है। नालंदा में सर्वप्रथम एक विहार की स्थापना सम्राट अशोक ने इसलिए बनाई थी; क्योंकि यह क्षेत्र भगवान बुद्ध एवं भगवान महावीर, दोनों का प्रिय माना जाता था। कालांतर में नागार्जुन द्वारा एक प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान की स्थापना यहाँ की गई, जो देखते-देखते एक वैश्विक प्रसिद्धि के विश्वविद्यालय में बदल गया। भारत-भ्रमण पर आए फाह्यान ने 490 ई० में नालंदा का भ्रमण किया था और उसने अपने यात्रासंस्मरणों में इसका उल्लेख भी किया है।

गुप्तवंश के समय नालंदा की प्रगति और भी तीव्र गति से हुई। पौरातात्त्विक अनुसंधानों से यह स्पष्ट है कि नालंदा विश्वविद्यालय का क्षेत्र, जो आज के बिहार-ए-शरीफ में पड़ता था—इतना बड़ा था कि उसका अनुमान लगा पाना भी कठिन हो जाता है। उस समय में भी वहाँ पढ़ने के लिए विद्यार्थी कोरिया, जापान, चीन, तिब्बत, इंडोनेशिया, पर्शिया एवं तुर्की से आया करते थे।

चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत के अनुसार नालंदा विहार की भूमि पाँच सौ धनाढ्य लोगों ने मिलकर दस करोड़ स्वर्ण मुद्राओं में खरीदी थी एवं तदुपरांत भगवान बुद्ध को अर्पित की थी। भारत की विविधता में एकता एवं सर्वधर्म समभाव की बात इसी से स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक मतावलंबी होते हुए भी नालंदा का सर्वाधिक विकास गुप्तकाल में ही हुआ। बाद में सम्राट हर्षवर्धन ने तो भगवान बुद्ध की अस्सी फुट ऊँची ताँबे की एक प्रतिमा बनवाकर नालंदा विश्वविद्यालय को भेंट भी की थी। यहाँ प्राप्त खंडहरों की खुदाई से मिली जानकारी के अनुसार नालंदा विश्वविद्यालय के भवन मीलों दूर तक फैले हुए थे। इस विश्वविद्यालय का पुस्तकालय लाखों पुस्तकों से भरा हुआ था, जिसका नाम धर्मगंज रखा गया था। इस ग्रंथालय के भी तीन हिस्से थे, जिनके नाम रत्नसागर, रत्नोदधि एवं रत्नरंजिका रखे गए थे। अकेला रत्नोदधि ही नौ मंजिल ऊँचा पुस्तकालय था तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शेष ग्रंथालयों में कितनी पुस्तकें रखी गई होंगी। यहाँ पर विद्यार्थी बौद्ध धर्म की महायान परंपरा के ग्रंथों का, वेदों का, उपवेदों का, ज्योतिर्विज्ञान का, तर्क, दर्शन एवं चिकित्सा इत्यादि का अध्ययन करते थे।

ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत में वहाँ उपस्थित एक ज्योतिर्विज्ञान वेधशाला का भी उल्लेख मिलता है, जिसके विषय में उसने लिखा है कि इसके माध्यम से आकाश का अध्ययन किया जाता है। निम्नांकित श्लोक उसकी पुष्टि करता प्रतीत होता है—

यस्याम्बुधरावलेहि शिखरश्रेणी विहारावली।
मालेबोर्ध्व विराजिनी विरचिता कान्ता मनोज्ञाभुवः॥

नालंदा विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के लिए तेरह छात्रावास बनाए गए थे और लगभग तीन हजार विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा, निःशुल्क भोजन यहाँ प्रदान किया जाता था। यहाँ तक कि विद्यार्थियों के भोजन, वस्त्र तथा औषधि

का प्रबंध भी विश्वविद्यालय की ओर से होता था। ह्वेनसांग के अनुसार नालंदा में लगभग पंद्रह सौ दस आचार्य थे। इनमें से दस उच्चतर श्रेणी के शिक्षक थे, पाँच सौ मध्यम श्रेणी के एवं एक हजार सामान्य श्रेणी के शिक्षक थे।

जिस तरह मगध क्षेत्र को ख्याति नालंदा विश्वविद्यालय के कारण मिली, वैसा ही एक और विश्वविद्यालय उत्तरी मगध क्षेत्र में भी रहा, जिसकी स्थापना पालवंश के राजा धर्मपाल द्वारा विक्रमशिला के नाम से की गई। कहते हैं कि कभी यहाँ पर छोटे-बड़े 102 मंदिर थे, जिनमें से प्रत्येक में एक आचार्य का निवास था और ये सभी अपने-अपने विषय का ज्ञान यहाँ प्रदान किया करते थे। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के केंद्रीय भवन का नाम विज्ञान गृह था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बारहवीं सदी तक यहाँ अध्ययनरत विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार के करीब तक पहुँच गई थी। प्रसिद्ध विद्वान दीपंकर श्रीज्ञान किसी समय यहाँ के प्रमुख आचार्य रहे होंगे, ऐसा सभी का मानना है।

प्राचीन भारत के ऐसे ही अन्य प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में काशी, जगद्दला, ओदंतपुरी, मिथिला, नवद्वीप एवं कांची के नाम लिए जाते हैं। इसी परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा गायत्री परिवार द्वारा हरिद्वार के पुण्यक्षेत्र में की गई। इसकी स्थापना के पीछे का उद्देश्य पवित्र और स्पष्ट है कि साक्षरता प्रदान करने वाले शैक्षणिक संगठनों से यह भारत की भूमि भरी पड़ी है, परंतु सार्थकता प्रदान करने वाले उन विश्वविद्यालयों का अभाव दिखाई पड़ता है और उस अभाव की पूर्ति के लिए ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय स्थापित किया गया है। इसके माध्यम से उन्हीं प्राचीन परंपराओं एवं ज्ञान की धाराओं का निर्वहन किया जा रहा है, जिनकी प्रतिष्ठा ऋषि-मुनियों ने वर्षों पहले की थी। ❑

यूनान का एक वृद्ध दार्शनिक अपने मित्र से बोला—"मैंने लोगों को सचाई और सदाचार की शिक्षा देने की योजना बनाई है। विद्यालय के लिए स्थान चुन लिया गया है, पर विद्याध्ययन के लिए विद्यार्थी नहीं मिलते।" मित्र व्यंग्य करते हुए बोले—"तो आप कुछ भेड़ें खरीद लीजिए और अपना पाठ उन्हें ही पढ़ाया करिए। आपकी इस योजना के लिए आदमी मिलने मुश्किल हैं।" हुआ भी ऐसा ही, कुल दो युवक आए, जिन्हें घरवाले आधा पागल समझते थे और मुहल्ले वाले सिरदरद। वृद्ध ने उन्हीं को पढ़ाना शुरू कर दिया। दूसरे लोग कहा करते—"बुड्ढे ने मन बहलाने का अच्छा साधन ढूँढ़ा।"

किंतु यही दोनों युवक इस बूढ़े विचारक से शिक्षा प्राप्तकर जब पहली बार घर लौटे तो उनके रहन-सहन, बोल-चाल, अदब-व्यवहार ने लोगों का हृदय मोह लिया। फिर तो जो विद्यार्थियों की संख्या बढ़नी शुरू हुई कि विद्यालय पूरा विश्वविद्यालय बन गया। पहले के दोनों छात्रों में से एक यूनान का प्रधान सेनापति, दूसरा मुख्य सचिव नियुक्त हुआ। ये वृद्ध ही सुविख्यात दार्शनिक जीनो थे और उनकी पाठशाला ने जीनो की पाठशाला के नाम से विश्वभर में ख्याति अर्जित की। वस्तुतः सुयोग्य विद्यार्थी न मिलें तो भी मनीषी निराश नहीं होते। वे अनगढ़ को सुगढ़ व श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करते हैं।

अध्यात्म की आवश्यकता एवं महत्त्व

अध्यात्म—अधि व आत्मन् शब्द से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है—आत्मा का अध्ययन एवं उत्थान। आत्मा अर्थात स्व या अपना समग्र अस्तित्व। इस तरह अध्यात्म जीवन को अपनी समग्रता में जानने का प्रयास है। इसका शुभारंभ स्वयं से होता है, जब अपना अस्तित्व ही सबसे बड़ी पहेली बन जाए और समाधान माँगे; यथा—मैं क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है, धरती पर मेरा प्रयोजन क्या है, क्या रोज काल-कवलित हो रहे अनगिनत लोगों, प्राणियों एवं आत्मीय जनों की भाँति मेरा भी ऐसा ही अवसान होगा—जिसका कोई निष्कर्ष नहीं।

इन प्रश्नों की गहरी खोज व्यक्ति को जाने-अनजाने में आध्यात्मिक पथ का राही बना देती है। जहाँ खड़े हों, वहीं से अस्तित्व को मथते प्रश्नों के उत्तर की खोज प्रारंभ हो जाती है। कोई आध्यात्मिक पुस्तक या इसके पन्ने या लेख हाथ लग जाएँ, इन्हीं को पढ़ते-पढ़ते समाधान की दिशा में कदम बढ़ चलते हैं। आध्यात्मिक ग्रंथों का पाठ-पारायण प्रारंभ हो जाता है। इनका पारायण करते-करते कुछ समाधान मिलते हैं, जीवन की कुछ बुनियादी बातें समझ आना शुरू होती हैं, लेकिन किसी प्रकाशित आध्यात्मिक व्यक्ति या गुरु की आवश्यकता अनुभव होती है, जहाँ प्रत्यक्ष आध्यात्मिक सत्य की एक झलक एवं मार्गदर्शन मिल सके।

अध्यात्म की आवश्यकता सामान्यतया समझ नहीं आती। जब सब ठीक चल रहा होता है, परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं या जीवन एक बेहोशी भरे प्रवाह के संग बह रहा होता है तो ऐसे में अस्तित्व के प्रश्न भी सोए-अलसाए होते हैं; यदि कुछ होते भी हैं तो वे उस गहराई से नहीं कौंधते, जहाँ से अध्यात्म तत्त्व जीवन में प्रविष्ट होता हो, लेकिन जीवन को झकझोरते अनुभवों के बीच जब वर्तमान से घोर असंतोष पनपता है, जीवन व अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित एवं निर्धारित करने की आवश्यकता अनुभव होती है, तो अध्यात्म का प्राकट्य होता है जिसके केंद्र में हमारा अस्तित्व महाप्रश्न बनकर खड़ा होता है, जो अपना समाधान माँगता है।

आज तो मनोवैज्ञानिक भी अध्यात्म को जीवन की एक आवश्यकता घोषित कर चुके हैं। उनके अनुसार अध्यात्म जीवन की एक मेटा नीड है, जिसके बिना जीवन का चरम विकास एवं उत्कर्ष अधूरा है। व्यक्ति संसार एवं समाज में कितनी ही बड़ी सफलता एवं उपलब्धि क्यों न पा ले; यदि वह स्वयं को नहीं जान पाया तो भीतर एक गहरा खालीपन, अधूरापन कचोटता रहेगा। इस खालीपन को आध्यात्मिक इच्छा को पूरा कर ही पाया जा सकता है। इस तरह समग्र रूप में व्यक्तित्व के उत्कर्ष को आधुनिक मनोविज्ञान सेल्फ एक्चुअलाइजेशन के रूप में जीवनलक्ष्य घोषित करता है। अध्यात्म के जीवन में महत्त्व को निम्न रूप में समझा जा सकता है—

(1) जब जीवन एकतरफे भौतिक विकास की चकाचौंध में उलझा हो तो इसे अध्यात्म ही संतुलन देता है, पूर्णता देता है अन्यथा एकतरफे विकास से भौतिकता के शिखर तक तो पहुँचा जा सकता है, लेकिन इसे कैसे सँभालें, इसका सही नियोजन कैसे हो, यह दृढ़ता एवं सूझ अध्यात्म ही देता है।

(2) बिना अध्यात्म के जीवन अचेतन मन के अँधेरे में खो जाता है, इसके कीचड़ में ही लथपथ होकर जीवन के अर्थ की तलाश करता है। अध्यात्म अचेतन के पार सुपरचेतन अर्थात जीवन की दिव्य संभावनाओं से व्यक्ति का परिचय कराता है व उस ओर बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करता है और जीवन को समग्रता से समझने व जीने का आधार देता है।

(3) व्यक्तित्व की समग्र समझ के साथ जीवन की समग्र समझ हमें अध्यात्म ही देता है; क्योंकि जीवन के तार इस जन्म तक सीमित नहीं होते। जीवन अनंत प्रवाह का नाम है, जिसका एक अध्याय इस जीवन के रूप में दृश्यमान है। अध्यात्म जन्म-जन्मांतर के कर्म जखीरे के साथ बढ़ रही जीवनयात्रा की समझ देता है और अनंत धैर्य के साथ इसके पार निकलने की राह सुझाता है।

(4) अध्यात्म व्यक्ति को स्वत:स्फूर्त रूप में नैतिक बनाता है। यहाँ नैतिकता ओढ़ी हुई नहीं होती, बल्कि अपने विवेक के आधार पर तय होती है। किसी भी गुण के प्रति यहाँ कट्टरता का भाव नहीं रहता, बल्कि ऐसे में व्यक्ति परिस्थिति के अनुरूप स्वयं को समायोजित करता हुआ

अंतर्निहित मानवीय एवं दिव्य संभावनाओं को अभिव्यक्त एवं विकसित करता है।

(5) अध्यात्म व्यक्ति को धार्मिक हठवादिता व कट्टरवादिता से बचाता है। व्यक्ति को धर्म के मर्म की समझ देकर, उसे सच्चा धार्मिक बनाता है। कर्मकांडों के महत्त्व को वह समझता है व इनकी सीमाओं को भी। इस तरह अध्यात्म—धर्म एवं नैतिकता को सम्यक रूप में अपनाता है व व्यक्ति को एक उपयोगी नागरिक बनाकर अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना सिखाता है।

(6) अध्यात्म व्यक्ति को परिवेश एवं प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाता है। इनके साथ तालमेल एवं सामंजस्य के साथ रहना सिखाता है। प्रकृति के हर घटक में वह आत्मतत्त्व को देखता है, ईश्वरीय प्रवाह को झरता हुआ अनुभव करता है। अतः प्रकृति के शोषण एवं प्रदूषण की बात तो दूर, वह इसको व इसके घटकों को किसी भी रूप में क्षति पहुँचाने की नहीं सोच सकता।

इस तरह अध्यात्म व्यक्ति को जीवन के व्यापकतम एवं गहनतम रूप में जीने की समझ देता है, जीने की कला सिखाता है। समाज, राष्ट्र एवं विश्व के एक उपयोगी घटक के रूप में अपनी भूमिका को निभाने के योग्य बनाता है। सार रूप में अध्यात्म व्यक्ति को अपनी संपूर्णता में जीने की राह दिखाता है। ❑

एक बार महर्षि अत्रि अपने आश्रम से चलकर एक गाँव में पहुँचे। आगे का मार्ग बहुत बीहड़ और हिंसक जीव-जंतुओं से भरा हुआ था सो वे रात को उसी गाँव में एक सद्‌गृहस्थ के घर टिक गए। गृहस्थ ने उन्हें ब्रह्मचारी वेष में देखकर उनकी आवभगत की और भोजन के लिए आमंत्रित किया। अत्रि ने जब समझ लिया कि इस परिवार के सभी सदस्य ब्रह्मसंध्या का पालन करते हैं, किसी में कोई दोष-दुर्गुण नहीं है तो उन्होंने आमंत्रण स्वीकार कर लिया। भोजनोपरांत अत्रि ने गृहस्थ को प्रणाम कर प्रार्थना की—'देहि मे सुखदां कन्याम्'—अपनी कन्या मुझे दीजिए, जिससे मैं अपना घर बसा सकूँ। उन दिनों वर ही सुकन्या ढूँढ़ने जाते थे। कन्याओं को वर तलाश नहीं करने पड़ते थे। उन दिनों नर से नारी की गरिमा अधिक थी। गृहस्थ ने अपनी पत्नी से परामर्श किया। अत्रि के प्रमाणपत्र देखे और वंश की श्रेष्ठता पूछी और वे जब इस पर संतुष्ट हो गए कि वर सब प्रकार से योग्य है तो उन्होंने पवित्र अग्नि की साक्षी में अपनी कन्या का संबंध अत्रि के साथ कर दिया।

अत्रि के पास तो कुछ था नहीं, इसलिए गृहस्थ संचालन के लिए आरंभिक सहयोग के रूप में अन्न, वस्त्र, बिस्तर, थोड़ा धन और गाय भी दिए। छोटी-सी, किंतु सब आवश्यक वस्तुओं से पूर्ण गृहस्थी लेकर अत्रि अपने घर पधारे और सुखपूर्वक रहने लगे। इन्हीं अत्रि और अनसूया के द्वारा दत्तात्रेय जैसी तेजस्वी संतान को जन्म मिला। भगवान को भी एक दिन इनके सामने झुकना पड़ा था। वस्तुतः यह कहना गलत है कि गृहस्थाश्रम साधना में किसी तरह बाधक है। प्राचीनकाल में बहुसंख्य ऋषि सपत्नीक रहकर गुरुकुल में वास कर साधना करते, शिक्षण, शोध-प्रक्रिया चलाते थे।

धन्य है हरिदास की भक्ति

कहते हैं कि ईश्वर के लिए यदि हृदय में सच्चा प्रेम हो, मन निर्मल हो, ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा-विश्वास हो तो साधक को ईश्वर का अनुराग, अनुग्रह व अनुदान एक-न-एक दिन अवश्य ही प्राप्त होता है। फिर व्यक्ति किसी भी जाति, धर्म या कुल का क्यों न हो, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, करुणासागर परमेश्वर तो बस भक्त का, साधक का प्रेम देखते हैं, उसके मन की निर्मलता को देखते हैं, उसकी अटूट निष्ठा व श्रद्धा को देखते हैं। और इन कसौटियों पर खरा उतरते ही भक्त को भगवान का अनुदान-वरदान मिलने लगता है। फिर तो भगवान भक्त के और भक्त भगवान के होकर रह जाते हैं। जैसा कि कहा गया है—

जात पात पूछे नहिं कोई,
हरि को भजै सो हरि को होई।

हरिदास की भक्ति भी कुछ इसी प्रकार की थी। वैसे तो हरिदास का जन्म एक मुसलिम परिवार में हुआ था, लेकिन उनकी ईश्वरभक्ति इतनी उच्चकोटि की थी कि उनकी भक्ति के सामने मानो कुबेर का खजाना भी तुच्छ जान पड़ता था।

वर्तमान के बांग्लादेश के यशोहर जिले में एक छोटा-सा गाँव था बूड़न। इसी गाँव में रहने वाले एक गरीब मुसलिम परिवार में हरिदास खान का जन्म हुआ था। पूर्वजन्म के प्रबल पावन संस्कार के कारण ही हरिदास खान को भगवान कृष्ण के प्रति परम अनुराग था, परम प्रेम था। सो उनकी भक्ति पूमन के चाँद की भाँति बढ़ती ही गई। एक दिन ऐसा भी आया कि किशोरावस्था में ही उन्होंने वैराग्य ले लिया और गृहत्याग कर वनग्राम के समीप जंगल में कुटी बनाकर रहने लगे। वे प्रायः हरिनाम जप में ही मग्न रहते थे। उनकी ख्याति बढ़ती जा रही थी। उनसे प्रेरित होकर हजारों लोग भगवान की भक्ति करने लगे थे।

उनकी ख्याति से कुछ लोग ईर्ष्या भी करने लगे थे। उन्हीं में वहाँ का एक जमींदार भी था। उसने उनकी कीर्ति व यश को नष्ट करने के लिए एक षड्यंत्र रचा और धन का लालच देकर हरिदास जी के पास एक वेश्या को भेज दिया। अपना भली भाँति शृंगार कर वह वेश्या रात्रि के समय हरिदास जी की कुटिया में पहुँच गई, लेकिन हरिदास तो हरि के ध्यान में मग्न थे। उनका मनोहर रूप देखकर वेश्या उन पर आसक्त हो गई। वह अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए भाँति-भाँति के उपाय कर हरिदास की समाधि भंग करने का प्रयास करती रही, पर वह सफल नहीं हो सकी।

प्रातः होने पर जब हरिदास समाधि से बाहर आए तो देखा वह स्त्री वहीं बैठी है। हरिदास बोले—"देवी! मैं क्षमा चाहता हूँ। समाधिस्थ होने के कारण मैं आपके यहाँ आने का प्रयोजन पूछ नहीं सका; आपका कुशलक्षेम पूछ नहीं सका; आपका सत्कार नहीं कर सका।" इस पर वह स्त्री बिना कुछ कहे वहाँ से चली गई। वह लगातार तीन रात्रियों तक ऐसा ही प्रयास करती रही, पर सफल न हो सकी।

वह हरिदास को तप से विचलित नहीं कर सकी, परंतु उनके पास आते-जाते उसके कानों में भी हरिनाम की आवाज के गुंजन से उसके अंतस् में आध्यात्मिक आनंद की स्फुरणा होने लगी। वह चौथी रात्रि भी आई। हरिदास जी उस समय भी भगवद्भजन में मग्न थे। वे भगवत्प्रेम में इतने डूबे हुए थे कि उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहे जा रही थी। वेश्या सोचने लगी कि जो मुझ जैसी परम सुंदरी की उपस्थिति का आभास तक नहीं करता और अपनी ही धुन में लीन रहता है, उसे निश्चित ही किसी अलौकिक आनंद की प्राप्ति हो रही है। अवश्य ही इसे कोई ऐसा आनंद प्राप्त हो रहा है, जिसके समक्ष संसार के सभी रूप, रस भी इसे फीके लगते हैं।

अंततः वह वेश्या उनके चरणों में गिर पड़ी और अपने अपराध के लिए अश्रुपूरित नेत्रों से क्षमा-याचना करने लगी और बोली—"हे महात्मन्! मुझ पापिन का उद्धार करो। मेरा अपराध क्षमा करो। मुझे अपनी शरण में ले लो।" उसके सच्चे प्रायश्चितभरे शब्दों को सुनकर हरिदास जी समाधि से बाहर आए और बोले—"देवी! एकमात्र मानव जीवन ही मुक्ति का मार्ग है। जो मानव तन पाकर भी

भक्ति नहीं कर सका, उसका इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है। देवि! उठो और अपने हृदय में हरिनाम धारण करो। हरिनाम धारण करने से तुम्हारा हृदय आलोकित हो उठेगा और अवश्य रूप से तुम्हारा उद्धार होगा।''

उस स्त्री ने सच्चे मन से संत हरिदास की वाणी को अपने हृदय में धारण कर ईश्वरभक्ति करने का संकल्प किया। हरिदास ने उसे दीक्षित करके तपस्विनी बना दिया। उन्होंने उस स्थान को उसे ही सौंप दिया और स्वयं हरिनाम का, हरिभक्ति का प्रचार करने निकल पड़े। वह स्त्री उसी कुटिया में रहकर हरिभजन करने लगी और आगे चलकर भगवान की परम भक्त बनी।

भगवान भी भक्त की भक्ति की परीक्षा नानाविध रूपों में लेते हैं। सो भक्त हरिदास की भक्ति की अभी और भी परीक्षा होनी बाकी थी। हरिदास जी वहाँ से चलकर शांतिपुर पहुँचे, जहाँ मुसलिम शासक था। अत्याचारी मुसलिम शासक के फतवे से हिंदुओं को अपना धर्माचरण करना कठिन हो रहा था। ऐसे में मुसलिम होते हुए भी हरिदास जी का हरिभक्ति करना मुसलिम अधिकारियों को कैसे रास आता। सो मुसलिम अधिकारियों ने हरिदास की शिकायत बादशाह से करते हुए कहा— ''बादशाह सलामत! जब नगर में आपके हुक्म से इसलाम को प्रचारित करने के लिए हिंदुओं को मुसलमान बनाने की मुहिम चलाई जा रही है, ऐसे में हमारा ही एक मुसलिम फकीर हिंदू धर्म के गीत गाता फिर रहा है। इससे हमारी मुहिम पर बुरा असर पड़ सकता है। इसलिए उसे सजा अवश्य ही मिलनी चाहिए।''

बादशाह के आदेश से तत्काल ही हरिदास जी की गिरफ्तारी हुई और उन्हें जेल में डाल दिया गया। पर उधर हरिदास जी जेल में भी हरिनाम का जाप ही करते रहे और जेल के अन्य बंदी भी उनके भक्त होने लगे। ऐसी स्थिति को देखकर अधिकारियों ने उन पर मुकदमा चलाया और उन्हें अदालत में काजी के सामने लाया गया। काजी ने कहा—''तुम हरिभक्ति को छोड़कर इसलाम धर्म का पालन करो तो तुम्हें छोड़ दिया जाएगा।''

संत हरिदास बोले—''काजी साहब! इस संसार का मालिक एक ही है। उसकी दृष्टि में मानव की अलग-अलग कौम नहीं है। हमने ही मनुष्यों को धर्म के आधार पर बाँट दिया है। उसी हरि ने प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार दिया है कि वह चाहे उसे जिस नाम से पुकारे। उस अल्लाह या भगवान की दृष्टि में मैं अपराधी नहीं हूँ तो आपकी दृष्टि में मैं अपराधी कैसे हूँ।''

काजी गुस्से में बोला—''या तो तुम कलमा पढ़ो, हरिनाम भक्ति छोड़ो, नहीं तो तुम्हें कठोर सजा मिलेगी।'' पर हरिदास बोले—''यह तो मानव की अपनी दृष्टि है कि वह किस दृष्टि से प्रभु के पास जाता है। आप जो भी सजा दें मुझे मंजूर है, पर देह के टुकड़े-टुकड़े होने पर भी मुझे हरिनाम छोड़ना स्वीकार नहीं।'' क्रोध में आगबबूला होते हुए काजी ने आदेश देते हुए कहा—''यह व्यक्ति काफिर है। इसे इसके गुनाह के लिए बाईस बाजारों में घुमाया जाए और इसे इतने बेंत लगाए जाएँ कि इसकी साँसें इसका साथ छोड़ दें।'' हुक्म की तामील हुई। हरिदास जी को जगह-जगह घुमाते हुए बेंत लगाए जाने लगे। मारने वाले थक गए, पर हरिदास हरिनाम-हरिनाम बोलते रहे। अंत में उन्हें मरा हुआ जानकर अधिकारियों ने उन्हें गंगा में फेंक दिया। पर जिसके जीवन की डोर स्वयं हरि ने अपने हाथ में ले रखी हो, उसे भला कौन मार सकता है?

पुनः उनके शरीर में चेतना का स्पंदन हुआ और वे गंगा से बाहर निकल आए। अधिकारियों ने जब यह देखा तो वे भयभीत हो गए और उन्हें लगा कि यह व्यक्ति सचमुच कोई दिव्य आत्मा है। उन्होंने हरिदास जी के चरण पकड़ लिए और उनसे क्षमा-याचना करने लगे। हरिदास जी ने उन्हें क्षमा कर दिया और बोले—''मेरे साथ यह तो होने ही वाला था। आप सब तो निमित्तमात्र हैं। वास्तव में भगवान यह जानना चाहते थे कि मैं ढोंगी तो नहीं हूँ। भगवान मेरी परीक्षा कर यह जानना चाहते थे कि क्या मैं सचमुच उनका हूँ।''

संत हरिदास जी के शब्द सुनते ही वहाँ उपस्थित लोगों के मुँह से धन्य-धन्य शब्द निकल पड़े। वहाँ से चलकर हरिदास जी नवद्वीप पहुँच गए, जहाँ स्वामी चैतन्य महाप्रभु हरिनाम की पावन सुधा बरसा रहे थे। वे महाप्रभु के सान्निध्य में बैठकर हरिनाम संकीर्तन करने लगे। फिर महाप्रभु की आज्ञा से वे हरिकीर्तन करते हुए देश-देशांतर घूमने लगे व हरिनाम का प्रचार करने लगे। अपने अंत समय में संत हरिदास जी जगन्नाथपुरी पहुँच गए और वहीं कुटिया बनाकर जीवनपर्यंत रहे। आज भी उनका नाम एक ऐसे संत के रूप में लिया जाता है, जिनकी भक्ति अतुलनीय थी। ❑

पर्व विशेष

जन्म-जन्मांतरों के संबंधों वाला यह गायत्री परिवार

प्रश्नों का उठना और जिज्ञासा का उभरना सहज मानवीय मनोवृत्ति के अंग हैं। एक नन्हे बालक से लेकर प्रयोगशाला में बैठे वैज्ञानिक के मन में उभरते प्रश्न ही उनके जीवन-विकास के पथ को सुनिश्चित करते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर व्यक्ति इंटरनेट पर भी तलाश सकता है और अंतर्मन में भी; इसीलिए प्रश्न का उत्तर क्या मिला, उससे ज्यादा यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि प्रश्न का उत्तर किससे मिला। यदि प्रश्नों का उत्तर सद्गुरु से मिले तो जीवनयात्रा सफल हो जाती है। सद्गुरु जीवंत शास्त्र की भाँति हैं, उनकी उपस्थिति में कोई भी जिज्ञासा हो—समाधान के स्वर उसे मिल ही जाते हैं। कुछ ऐसा ही परमपूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में भी अनेकों के साथ घटा करता था।

भारतीय प्रशासनिक सेवा में उच्च पद पर कार्यरत एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी ने भी अपनी जिज्ञासा को उनसे ऐसे ही एक बार समाधान पाते पाया। एक लंबा प्रतिष्ठित कार्यकाल उनका रहा था और उस लंबे कार्यकाल के भी एक बड़े हिस्से में उन्होंने स्वयं को पूज्य गुरुदेव के शिष्य के रूप में पाया था। परमपूज्य गुरुदेव के अतिमानवीय व्यक्तित्व, उनकी युगांतकारी योजनाएँ, भीषण तप, प्रखर पांडित्य, दुरूह साधनात्मक जीवन के प्रति उनके मन में गहरा समर्पण और अटूट विश्वास था। इन सबके साथ-साथ उनके मन में कहीं गहरे में एक जिज्ञासा भी थी, जिसको वो अक्सर सोचा करते, पर उसे गुरुवर के सम्मुख प्रकट करने का साहस तो अभी तक न जुटा सके थे।

उनकी उत्कंठा इस विषय में थी कि परमपूज्य गुरुदेव का जीवन समाधिस्थ भगवान शिव के जीवन के समान था। गहन वैराग्य और निरंतर साधना, तपस्या ये उनके जीवन के आधारस्तंभ थे। उन अधिकारी महोदय को लगता था कि संसार से इतना विरक्त रहने के बाद भी आखिर किस कारण पूज्य गुरुदेव ने गायत्री परिवार जैसे संगठन की स्थापना की। संगठनों को वे आर्थिक शोषण के लिए बनी संस्थाएँ समझा करते थे। इसीलिए उन्हें लगता था कि आखिर किस कारण से पूज्य गुरुदेव ने साधना के समस्त शिखरों को छूने के बाद फिर संगठन बनाने का कार्य किया होगा?

जिन्होंने समस्त मानव जाति के भविष्य के लिए योजना को लिखकर रख दिया हो, जिनके लिए उनके मन में उमड़ रही इस सामान्य-सी जिज्ञासा को जान पाना कोई विशेष कठिन कार्य न था। एक दिन जैसे ही वे गुरुवर से मिलने पहुँचे, उनके चरणस्पर्श करके जमीन पर बैठे कि पूज्यवर ने उनके मन के प्रश्नों का समाधान करना आरंभ कर दिया और बोले—"बेटा! हमारा संगठन, संगठन कम विश्वव्यापी योजना ज्यादा है। इस युग निर्माण योजना के माध्यम से हमारा प्रयास एक ही है कि पूरी मानवता को प्रेम, सद्भाव, आत्मीयता जैसे उच्च आध्यात्मिक आदर्शों की आधारशिला पर एकत्रित और संघबद्ध किया जा सके। ऐसा करने के पीछे हमारे दो उद्देश्य हैं—पहला तो यह कि लोग संगठन की शक्ति को महसूस कर सकें। तिनके-तिनके जुड़कर के मोटी रस्सी बन जाती है, जो मदमस्त हाथी को भी बाँध लेती है। इसी तरह एकाकी सत्प्रयास नगण्य प्रभाव दिखा पाते हैं, पर जब वे मिलकर के एक हो जाते हैं तो उनका स्वरूप देखते ही बनता है। ईंटें बिखरी पड़ी हों तो उनका मूल्य क्या है? पर जब वे संगठित होकर के इमारत में बदल जाती हैं तो उनका महत्त्व बढ़ जाता है। आज मानवता को इसी तरह संघबद्ध और संगठित होने की आवश्यकता है।"

परमपूज्य गुरुदेव के शब्द मात्र उन अधिकारी महोदय के समाधान के लिए नहीं निकल रहे थे, वरन अनेक जिज्ञासुओं के अंतर्मन में आते प्रश्नों के समाधान के लिए निकल रहे थे। वे आगे कहने लगे—"और बेटा! इस संगठन को हमने परिवार का रूप दिया है, क्यों? इसलिए कि इसका उदाहरण लेकर सारा विश्व एक परिवार बन सके। सभी के भीतर आत्मीयता और उदारता की वृत्ति जागे और लोग एकदूसरे को सुखी व संपन्न बनाने के लिए अपने स्वार्थों, सुविधाओं और अधिकारों का परित्याग करते हुए प्रसन्नता, संतोष एवं गर्व का अनुभव करें। इस प्रकार की एकता से ही विश्व में सच्ची शांति पनपेगी। जो साधन आज

एकदूसरे को नीचा दिखाने में, आक्रमणों से सुरक्षा करने में खरच हो जाते हैं—कल उनका उपयोग सामूहिक समृद्धि, शांति, उन्नति जैसे कार्यों में किया जा सकेगा।''

उन सज्जन के मन में उमड़े प्रश्न तो कभी के शांत हो चुके थे, पर पूज्य गुरुदेव अब उनकी जिज्ञासा को शांत करने के लिए नहीं बोल रहे थे, बल्कि हर गायत्री परिजन के अंतस् को झकझोरने के लिए बोल रहे थे। वे बोले—''बेटा! इस परिवार में हमने चुन-चुनकर, गिन-गिनकर, परख-परखकर मणिमुक्तक खोजे हैं और उन्हें एक शृंखला में आबद्ध किया है। ये जितने लोग इस परिवार में जुड़े हैं उनके साथ हमारा जन्मों-जन्मों का संबंध रहा है। जिनकी पूर्व तपश्चर्याएँ और उत्कृष्ट भावनाएँ बहुत थीं, जो हमारे साथ थे उन्हें हम पहचानते हैं, चाहे वो भूल गए हों।'' यों भूले तो वे भी नहीं हैं, अनायास ही आत्मीयता उमड़ते देखकर उन्हें आश्चर्य तो लगता है कि इस असाधारण भाव-प्रवाह का कारण क्या है?

गुरुदेव बोले—''कारण यह ही है बेटा कि ये संबंध जन्म-जन्मांतर के हैं। अनेक जन्मों से चले आ रहे संबंधों की आत्मीयता केवल चोला बदलने भर से समाप्त थोड़े ही हो जाती है। उनके अंतर्मन में उनकी सूक्ष्म अनुभूतियाँ जमी रहती हैं और परिचित होने का आभास कराती रहती हैं। उन्हें इसीलिए हमसे चिर-परिचित होने का एहसास होता है; जबकि हम तो उनको जन्म-जन्मांतरों से जानते हैं। जंगल से लौटी गाय अपने बछड़े को देखकर जिस तरह रँभाती है, चाटती है वैसा ही कुछ हमारा भी मन करता है। हमारे हृदय का प्रेम तो हम ही जानते हैं बेटा!''

पूज्य गुरुदेव के शब्द विराम पा रहे थे, पर उन सज्जन की आँखें नम हो चुकी थीं। बौद्धिक कुतूहलवश उभरी जिज्ञासा के उत्तर में इतने हृदयस्पर्शी शब्द सुनने को मिलेंगे, इसका उन्हें तनिक-सा भी भान न था। मन से उभरे विचार खो गए थे और हृदय पर प्रेम का अधिकार था। उन्हें उनके पूज्य गुरुदेव के साथ के जन्म-जन्मांतरों के संबंध स्मरण आ रहे थे। क्यों न हम भी आज अपने उन्हीं संबंधों का स्मरण कर लें? ❑

शिष्य ने गुरु से पूछा—''गुरुवर! साधना का उद्देश्य क्या है?'' गुरु बोले—''वत्स! बिखराव को, अस्त-व्यस्तता को रोककर अपनी शक्तियों को एक दिशा में लगा देने की महत्ता से सभी अवगत हैं। जैसे बारूद बिखेरकर उसमें आग लगा दी जाए तो भक से जलकर राख हो जाएगी, पर यदि उसे बंदूक या तोप में भरकर एक दिशा में गोली समेत धकेला जाए तो लक्ष्य को तहस-नहस कर देगी। सूर्य किरणें ऐसी ही बिखरी रहती हैं, पर यदि उन्हें आतिशी शीशे के द्वारा एकत्र किया जा सके तो थोड़े से दायरे का एकत्रीकरण देखते-देखते आग जलाने लगेगा। ढेरों भाप ऐसे ही उड़ती रहती है, पर यदि उसे रोककर एक नली विशेष से निर्धारित प्रयोजन के लिए नियोजित किया जाए तो रेलगाड़ी के इन्जन दौड़ने लगते हैं। नदियों में पानी निरर्थक बहता रहता है, पर यदि बाँध बनाकर किसी नहर द्वारा बहाया जाए तो लंबे क्षेत्र को सिंचाई होने और प्रचुर अन्न उपजने की संभावना बनती है। वस्तुतः यह सब बिखराव को रोकने, एक दिशा में प्रयोग करने की एकाग्रता के चमत्कारी सत्परिणाम हैं। साधना का उद्देश्य इसी एकाग्रता के साथ तप-ऊर्जा के सुनियोजन से है।''

तनाव को त्यागें

वर्तमान समय में बढ़ता हुआ तनाव आज लोगों के जीवन में इस कदर प्रवेश कर गया है कि उसके कारण नित नए रोग व समस्याएँ बढ़ रही हैं। आज दुनियाभर में तनाव के कारण रोगग्रस्त होने वाले मरीजों की संख्या तेजी के साथ बढ़ रही है; क्योंकि लंबे समय तक हमारे तन व मन में तनाव का रहना तन व मन, दोनों को बीमार बना रहा है। ध्यान देने वाली बात यह है तनाव का यह संक्रमण इस तेजी के साथ बढ़ रहा है कि तनावग्रस्त व्यक्ति के आस-पास रहने वाले लोगों को भी यह अपनी गिरफ्त में सहजता से ले लेता है।

देखा जाए तो हमने स्वयं ही अपने जीवन में तनाव के अनेक कारण पैदा किए हैं। जैसे-जैसे जीवन में तनाव बढ़ रहा है, उसी के साथ नए-नए रोग भी बढ़ रहे हैं; क्योंकि जीवन में आने वाला तनाव उस अनुपात में नहीं घट रहा है, जिस अनुपात में वह बढ़ रहा है। चिकित्सकों का यह मानना है कि लगभग 90 प्रतिशत मरीज अपनी स्वास्थ्य समस्याओं के लिए स्वयं जिम्मेदार होते हैं। जब व्यक्ति के मस्तिष्क को पूरा आराम नहीं मिल पाता है और उस पर हमेशा एक दबाव बना रहता है, तो उस पर तनाव हावी हो जाता है।

चिकित्सकीय भाषा के अनुसार—तनाव अर्थात शरीर की होमियोस्टैसिस में गड़बड़ी। यह वह अवस्था है जो किसी भी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक कार्य-प्रणाली को गड़बड़ा देती है। अनेक वैज्ञानिक शोधों के अनुसार—तनाव के दौरान व्यक्ति के शरीर में कई तरह के शारीरिक व जैविक बदलाव होते हैं, जिनसे शरीर में कई हॉर्मोन्स का स्तर बढ़ जाता है, जिनमें एड्रिनेलिन और कॉर्टिसोल प्रमुख हैं। इनकी वजह से दिल का तेजी से धड़कना, पाचन-क्रिया का मंद पड़ जाना, रक्त का प्रवाह प्रभावित होना, सिरदरद रहना, नर्वस सिस्टम की कार्य-प्रणाली गड़बड़ा जाना और इम्यून सिस्टम का कमजोर होना जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लगातार तनाव बने रहने से शरीर पर इनका बुरा प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिए, जो लोग प्रायः अधिक तनाव में रहते हैं, उनमें बुढ़ापे के लक्षण प्रकट होने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। शरीर स्ट्रेस हॉर्मोन बनाता है, जिससे शरीर में जैविक बदलाव होने लगते हैं। तनाव के दौरान नींद, खान-पान व शारीरिक सक्रियता पर बुरा असर पड़ता है, जिससे असमय बुढ़ापा आने लगता है।

तनाव अस्थमा की शुरुआत का कारण भी हो सकता है। तनाव के कारण अस्थमा के लक्षण गंभीर हो सकते हैं। जो माता-पिता अधिक तनाव लेते हैं, उनके बच्चों में दमा होने की आशंका बढ़ जाती है। तनाव के कारण हमारा पाचनतंत्र भी प्रभावित होता है। लगातार तनाव रहने से पेट में मरोड़ रहना, पेट फूलना, सूजन, भूख न लगना या अत्यधिक लगना, अपच आदि की समस्या बनी रहती है। तनाव के कारण पाचक रस (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) का स्राव अधिक मात्रा में होता है, जिसकी अधिक मात्रा से पेट की भीतरी परत और पाचन-मार्ग को नुकसान पहुँचता है और इससे अल्सर का खतरा भी बढ़ जाता है।

तनाव की स्थिति में प्रायः हृदय की धड़कनें तेज हो जाती हैं और रक्त का प्रवाह भी बढ़ जाता है। अचानक होने वाले भावनात्मक तनाव से हृदय संबंधी गंभीर समस्याएँ हो सकती हैं। इसलिए जिन्हें पहले से ही हृदय संबंधी समस्याएँ हैं, उन्हें तनाव से बचना चाहिए। शोध अध्ययन यह बताते हैं कि तनाव दिल के रोगों की आशंका को 15 से 20 प्रतिशत तक बढ़ा देता है।

तनाव से हमारे शरीर की रक्तनलिकाएँ भी संकुचित हो जाती हैं, जिससे रक्तदबाव बढ़ जाता है और लगातार रक्त का दबाव बढ़ा रहने से स्ट्रोक का खतरा भी बढ़ जाता है। तनाव के कारण हमारे शरीर की रोग प्रतिरोधक तंत्र की कार्य-प्रणाली भी गड़बड़ा जाती है। हमारे शरीर का इम्यून सिस्टम (रोग प्रतिरोधक तंत्र) एंडोक्राइन सिस्टम से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होता है, इसलिए हॉर्मोन का स्राव भी नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

तनाव हमारे मस्तिष्क को शांत नहीं रहने देता, जिससे नींद से जुड़ी समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। नींद में व्यतिक्रम आने से हमारा दिमाग पूरी क्षमता के साथ काम नहीं कर पाता, जिससे व्यक्ति की सोचने की क्षमता पर भी असर पड़ता है।

लंबे समय तक बना रहने वाला तनाव मस्तिष्क के उन रसायनों को परिवर्तित कर सकता है, जो हमारी मनोदशा को नियंत्रित करते हैं। जो व्यक्ति अधिक तनाव लेते हैं, उनके अवसाद से ग्रसित होने की आशंका 80 फीसदी तक बढ़ जाती है और इसके साथ ही उनके कई मानसिक रोगों की चपेट में आने की संभावना भी बढ़ जाती है।

लगातार बने रहने वाले तनाव की स्थिति मस्तिष्क की कोशिकाओं और हिप्पोकैंपस को नष्ट कर देती है, हिप्पोकैंपस हमारी याद्दाश्त वाला हिस्सा होता है, इस पर बुरा असर पड़ने से डिमेंशिया (याद्दाश्त संबंधी समस्या) होने का खतरा बढ़ जाता है।

अतः तनाव का जीवन में उचित प्रबंधन करना अत्यंत जरूरी है और इसके लिए कई उपाय हैं, जैसे—योग-प्राणायाम, ध्यान, रिलैक्सेशन तकनीकें और व्यावहारिक उपाय। अमेरिकन एकेडमी ऑफ न्यूरोलॉजी ने तो ध्यान अर्थात मेडिटेशन के लिए 'मेडिटेशन इज़ मेडिसिन' शब्दावली का उपयोग किया है। इसकी रिपोर्ट में यह कहा गया है कि मेडिटेशन सतर्कता और एकाग्रता बढ़ाता है, याद्दाश्त सुधारता है और दरद के एहसास को भी कम करता है। इसके अलावा प्राणायाम व रिलैक्सेशन तकनीकें (विश्रांतिकारक उपाय) भी तनाव को दूर करने व उस पर नियंत्रण पाने में मददगार होते हैं।

रिलैक्सेशन तकनीकों में एक सरल तकनीक—प्रोग्रेसिव रिलैक्सेशन तकनीक है, जो कि बहुत ही सरल है। इसमें व्यक्ति किसी आरामदायक स्थान पर शांत होकर बैठ जाए या लेट जाए और अपनी आँखें बंद कर ले। अब 10 सेकेंड तक अपने पैर की उँगलियों को कसकर जितना अधिक अंदर की ओर मुड़ सकता है, मोड़ें और फिर उन्हें ढीला छोड़ दें। अपने पैर की उँगलियों के बाद, अपने पंजों, टाँगों, पेट, हाथ की उँगलियों को और इसके बाद गरदन व चेहरे पर अधिक-से-अधिक तनाव या खिंचाव दें, फिर उन्हें ढीला छोड़ दें और यह भावना करें कि इस पूरी प्रक्रिया के माध्यम से तनाव हमारे पैरों की उँगलियों से लेकर सिर तक होते हुए शरीर से बाहर निकल रहा है।

तनाव से निपटने में स्वयं से कहे जाने वाले सकारात्मक कथन (स्वकथन) भी बहुत मददगार होते हैं। इसलिए थोड़ा भी खाली समय होने पर अच्छे वाक्यों को मन में दोहराना चाहिए। इसके लिए किसी शांत स्थान पर बैठकर आँखें बंद करके गहरा श्वास लें और जब श्वास छोड़ें तो मन में दोहराएँ—'सब ठीक है', 'जो होगा अच्छा होगा', 'हमारे अंदर असीम सामर्थ्य है', 'हम सब कुछ कर सकते हैं'।

संगीत भी तनाव का विरोधी है, इसलिए अपने मनपसंद गीत-संगीत को सुनकर भी हम अपने तनाव को कम कर सकते हैं और तनाव से थोड़े समय के लिए राहत पा सकते हैं। यह थोड़े समय की राहत हमें इतनी भरपूर ऊर्जा देती है, जिससे हम अपने कार्यों से तनाव कम कर सकते हैं।

उन्नत मार्ग में कठिनाइयाँ स्वाभाविक हैं। यदि ऐसा न होता तो संसार में सभी महान बन जाते। कोई साधारण, सामान्य अथवा पतित होता ही नहीं। कठिनाइयों पर विजय पाने का संकल्प जाग्रत रहे तो वह पूरा होगा ही। *—परमपूज्य गुरुदेव*

शरीर की मालिश से भी तनावग्रस्त मांसपेशियों को आराम मिलता है और इससे रक्तसंचार में भी सुधार होता है। प्राकृतिक वातावरण भी हमारे तनाव को विस्मृत करने और हमें ऊर्जा से भरपूर करने में सहायक होता है। तनाव दूर करने के लिए अपनी दिनचर्या में 6 से 8 घंटे की नियमित नींद जरूर लें और सोने से एक घंटे पहले अपने इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों, जैसे—टीवी, कंप्यूटर, मोबाइल इत्यादि को बंद कर दें। संतुलित, सुपाच्य व पोषणयुक्त आहार ग्रहण करें। शरीर में पानी की कमी हमारी मानसिक ऊर्जा व क्षमता को कम करती है, इसलिए प्रतिदिन 8 से 10 गिलास पानी जरूर पिएँ। अपनी दिनचर्या में से कुछ समय अपने परिवार व दोस्तों के लिए भी निकालें। इस तरह ये छोटे-छोटे उपाय हैं, जो बड़े-से-बड़े तनाव को धराशायी करने में कारगर हैं, बस, इन्हें अपनाने की जरूरत है। ❑

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ

साधक के मन में यदि ईश्वर को पाने की सच्ची लगन हो, सच्ची तड़प हो और उसकी साधना सच्ची हो तो ईश्वर का अनुग्रह एक-न-एक दिन साधक को प्राप्त होकर रहता है। बस, उसके लिए चाहिए अपने आराध्य, अपने इष्ट, अपने गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास। साथ ही चाहिए साधना में नियमितता। परमात्मा तो हर जीव के अंतस् में आत्मा के रूप में स्वयं ही विराज रहे हैं। बस, उन्हें पहचानने भर की देर है। श्रद्धा और विश्वास के अभाव में अपने ही अंतस् में विराजमान ईश्वर को, परमेश्वर को, सर्वेश्वर को हम नहीं देख पाते। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है—

भवानीशङ्करौ वन्दे
श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति
सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

अर्थात श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अंत:करण में स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते।

कहने का आशय यह है कि ईश्वर के प्रति साधक की श्रद्धा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों वह ईश्वर के उतना ही पास होता जाता है, समीप पहुँचता जाता है। जब एक दिन साधक की श्रद्धा अपने चरम को प्राप्त करती है, तब साधक की चेतना भी अपने शिखर पर होती है और तब साधक अपने अंतस् में परमात्मा को विराजमान पाता है। तब उसकी श्रद्धा ही ईश्वर का रूप धारण कर लेती है। इसलिए एक बार अपने आत्मदेव में परमात्मदेव की एक झलक पा लेने के बाद व्यक्ति सृष्टि के कण-कण में परमात्मा के होने की अनुभूति करने लगता है। उसे हर जीव में अपने ही आत्मदेव, परमात्मदेव की झलक दीखने लगती है। फिर साधक का जीवन व्यवहार, जगत व्यवहार स्वयं ही बदल जाता है।

सूर्य की लाली में, पूनम की छटा में, सागर की लहरों में, वन-उपवन में और चाँद-सितारों में उसे उसी एक सर्वव्यापी ईश्वर का नूर दीखने लगता है। यह पूरी सृष्टि ही उसे ईश्वर की साक्षात् प्रतिकृति और अभिव्यक्ति नजर आती है। तब हर पल, हर क्षण सचमुच स्वयं को ईश्वर में और ईश्वर को स्वयं में होने की अनुभूति होने लगती है। तब साधक द्वारा उच्चारित मंत्रध्वनि नाभिचक्र से गुंजरित होने लगती है। उसकी आकुल पुकार, प्रार्थना परमात्मा बनकर हृदय में आ उतरती है। ध्यान करते हुए वह अपने आज्ञाचक्र से ज्योतिपुंज के दर्शन करने लगता है। अपने हृदय को विशाल सागर-सा लहराता देखता है तथा उसमें भाव-संवेदना की ऊँची-ऊँची लहरों को उठते हुए देखता है—जिनमें सारा जगत, सारी सृष्टि समायी जा रही है।

अपने चित्त चिदाकाश में वह परमात्मा को सूर्य, चंद्र, सितारों के रूप में जगमगाते हुए देखता है। ईश्वर के परम आलोक से अपने अंतस् को आलोकित हुआ पाता है। तब वह स्वयं को सबमें और सबको स्वयं में ही देखने लगता है। हर जीव में शिव को देखने लगता है। तब उसका अंतस् ब्रह्मानंद, उसका रोम-रोम ब्रह्मानंद में पुलकित हो उठता है। तब वह जगत में रहते हुए अपने सभी कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक पालन करते हुए, सर्वत्र ईश्वरदृष्टि रखते हुए हर पल आनंद-ही-आनंद में होता है। वह देह में रहते हुए भी देहातीत होता है, और हर पल आत्मभाव में ही स्थित होता है। वैसे ही, जैसे—नानक, कबीर, रैदास, मीरा, तुलसी, नरसी मेहता, रामकृष्ण परमहंस और युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी जैसे संत, ऋषि, योगी आदि हर पल आत्मभाव परमात्मभाव में स्थित रहा करते थे।

अस्तु यदि हम चाहते हैं कि आत्मिक आनंद, ईश्वरीय आनंद में हमारे रोम-रोम पुलकित हों, तो हमें अपने आराध्य में, अपने इष्ट में, अपने गुरु में—अपार श्रद्धा, अटूट श्रद्धा होनी चाहिए, अपार प्रेम होना चाहिए; क्योंकि श्रद्धा और प्रेम के बिना जो भक्ति है, उसका कोई लाभ नहीं, कोई अर्थ नहीं। इस संबंध में संत कबीर ने ठीक ही कहा है—

प्रेम बिना जो भक्ति है,
सो निज दंभ विचार।

उदर भरन के कारणे,
जन्म गँवायो सार॥
भाव बिना नहिं भक्ति जग,
भक्ति बिना नहीं भाव।
भक्ति भाव इक रूप है,
दोऊ एक सुभाव॥

अर्थात जिस भक्ति में प्रेम नहीं, श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं वह भक्ति—भक्ति नहीं, वह तो दिखावा मात्र है। ऐसी भक्ति वैसे ही व्यर्थ है, जैसे मात्र पेट भरने के लिए उत्तम जन्म गँवाना है। दूसरी ओर श्रद्धा, विश्वास के साथ-साथ हमारी भक्ति निष्काम होनी चाहिए तभी हमारी साधना शिखर तक पहुँचती है और हमें आत्मलाभ व परमात्मलाभ प्रदान करती है। तभी हमें आत्मज्ञान प्राप्त होता है। देखा-देखी भक्ति करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता; क्योंकि हमारी भक्ति को परखने के लिए सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वर सर्वत्र विराजमान जो है। उसकी नजर से भला हम क्या छिपा सकते हैं? क्योंकि वह तो अंतर्यामी है। हमारे जीवन में कठिन-से-कठिन परिस्थितियाँ आ जाएँ फिर भी हमें अपनी साधना तथा अपनी भक्ति नहीं छोड़नी चाहिए; क्योंकि ये परिस्थितियाँ आती हैं हमारी साधना, भक्ति की परीक्षा लेने।

संत कबीर के प्रस्तुत दोहों में भी कुछ ऐसे ही भाव मुखरित हो रहे हैं—

जब लग भक्ति सकाम है,
तब लग निष्फल सेव।
कहैं कबीर वह क्यों मिले,
निषकामी निजदेव॥
आरत ह्वे गुरु भक्ति करु,
सब कारज सिध होय।
कर्म जाल भवजाल में,
भक्त फंसे नहीं कोय॥
देखा-देखी भक्ति का,
कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाँड़सी,
केंचुलि तजत भुजंग॥
तोटे में भक्ती करै,
ताका नाम सपूत।
मायाधारी मसखरे,
केते गए अऊत॥
ज्ञान संपूरण ना भिदा,
हिरदा नाहिं जुडाय।
देखा-देखी भक्ति का,
रंग नहीं ठहराय॥

अर्थात जब तक सांसारिक भोगों की कामना रखकर भक्ति की जाती है, तब तक मुक्ति पाने के लिए वह उतनी फलवती नहीं होती; क्योंकि हमारे आत्मस्वरूप, चेतनस्वरूप देव जो कामनारहित हैं, वे जगत-कामना करने से कैसे मिल सकते हैं। अतएव जगत-कामनाओं से दु:खी (विरक्त) होकर गुरु की भक्ति करो, ईश्वर की भक्ति करो, फिर मुक्ति के सभी कार्य सिद्ध हो जाएँगे। विरक्त ईश्वरभक्त कर्म या विषय के किसी जाल में नहीं फँसता। देखा-देखी भक्ति का सच्चा रंग कभी नहीं चढ़ सकता; क्योंकि विपत्ति पड़ने पर ऐसा व्यक्ति भक्ति को उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे सर्प केंचुली को त्याग देता है। केवल मुनाफे में ही नहीं घाटे में भी भक्ति करे, वही सच्चा गुरुभक्त है, ईश्वरभक्त है; क्योंकि कितने ही मसखरे संपदा के अभिमान में नष्ट हो गए।

जब तक पूर्णज्ञान हृदय में नहीं बैठता, तब तक वह शीतल नहीं होता। केवल देखा-देखी भक्ति करने से उसका भाव स्थायी नहीं होता। अत: यदि हमें सचमुच ईश्वर को पाना है, स्वयं को पाना है तो हमें श्रद्धा, विश्वास के साथ सकाम नहीं, निष्काम भक्ति करनी चाहिए। विपरीत परिस्थितियों में भी हमें अपनी भक्ति पर दृढ़ रहना चाहिए। ❑

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः। कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

अर्थात साधुओं (सत्पुरुषों) का दर्शन पुण्यदायी होता है; क्योंकि साधु जन तीर्थस्वरूप होते हैं। तीर्थसेवन का फल तो कालांतर में प्राप्त होता है, परंतु साधुओं (सत्पुरुषों) से मिलन तुरंत फल प्रदान करता है।

उल्लास व उमंग का उत्सव है—नववर्ष

नववर्ष 2020 की अनगिनत बधाई। नववर्ष—उल्लास व उमंग का उत्सव है। यह नवजीवन, नवसृजन, नवकल्पना, नवधारणा का समन्वय है। नई शक्ति और नई चेतना के संचार का उद्गम है। सद्भावना एवं अपनत्व का सुंदर उपहार है, जिसे हम नववर्ष पर बिखेरते हैं, लोगों के लिए शुभकामनाएँ भेजते हैं, उन्हें अपनी ओर से हार्दिक बधाइयाँ देते हैं, इस तरह नववर्ष पर पूरी दुनिया में शुभभावना का संचार व प्रसार एक साथ होता है। पूरे विश्वभर के लोग इस दिन का बे-सब्री से इंतजार करते हैं और नववर्ष का उत्सव मनाने के लिए एकत्रित होते हैं।

कालचक्र गतिशील है। चक्र का कोई भी बिंदु नया या पुराना नहीं हो सकता। प्रथम या अंतिम भी नहीं। अथर्ववेद के ऋषि भृगु की बात ध्यान देने योग्य है। वे कहते हैं, काल सभी प्राणियों का पिता है और वही पुत्र बनता है। पिता को अतीत कहें तो पुत्र आधुनिकता है। दोनों के मध्य कोई विभाजन रेखा नहीं है। वे दो हैं ही नहीं। हम मनुष्य, काल के तीन टुकड़े करते हैं—अतीत, वर्तमान और भविष्य, लेकिन गतिशील कालचक्र तीन खंडों में नहीं है। हमारी इच्छा, स्वप्न और योजनाएँ—हमारा भविष्यकाल हैं। उनका पूरा होना सुनिश्चित नहीं है। नियतिवादी या भाग्यवादी मानते हैं कि भविष्य सुनिश्चित है। वे कर्म पुरुषार्थ पर कम और भाग्य पर ज्यादा विश्वास करते हैं।

पंचांग मनुष्य की प्रतिभा का चमत्कार है। उसका उपयोग योजना बनाने में है। भारतीय कालगणना में तिथि, पल आदि को ग्रह-नक्षत्र जैसे खगोल विज्ञान के आधार पर व्यवस्थित किया गया है। ईसा के कलेंडर में ऐसा नहीं है। हम भारतवासी अँगरेजी प्रभुता और प्रभाव में इसी कलेंडर के साथ दीवार पर टँगे हैं। जो बीता, वह भरा है हमारे चित्त में। अनेक अनुभव हैं, कुछ उल्लासदायी हैं तो ज्यादातर तिक्त हैं। वर्तमान अभी अनुभवरिक्त है। उसके अंतर्मन में अतीत के अनुभव हैं, पर इससे क्या ? हमारे मन का संकल्प तो यथावत् है।

मूलभूत प्रश्न है कि क्या समय का अस्तित्व होता है ? नोबेल पुरस्कार विजेता कवि आक्टवियों पाज ने काल की अनुभूति पर सुंदर कविता लिखी है—घड़ी बजती है इसलिए सब समय है। यह सब समय नहीं है। यह अब केवल अब है। समय इसलिए है भी कि समय अब वर्तमान नहीं है। समय अब को खाता है। समय शून्य वर्तमान का बोध है और समय वर्तमानहीन गति का। यहाँ कालगणना नहीं, कालबोध की अनुभूति है।

कालबोध भारतीय चिंतन का पराग है। महाभारत युद्ध जीतने के बाद व्यापक संहार से व्यथित युधिष्ठिर संन्यास लेने को तत्पर थे। उन्हें सभी भाइयों, द्रौपदी व श्रीकृष्ण ने समझाया, परंतु विफल रहे। फिर वेदव्यास आए समझाने। व्यास ने काल-प्रभाव पर अपना दृष्टिकोण रखा और कहा कि कालचक्र रथ के पहिये की तरह घूमता है। सुख-दुःख बारी-बारी से आते हैं। मंत्र और औषधियाँ भी काल की अनुकूलता से ही फल देते हैं। काल से जड़ता भी हरीतिमा में परिवर्तित हो जाती है। मंत्र का फल भाग्य के विपरीत नहीं मिलता। काल से ही आँधी चलती है और काल से ही वृष्टि होती है। काल से वन में वृक्ष फलते हैं। काल से ही कृष्ण पक्ष, रात्रियाँ आती हैं और काल से ही चंद्रमा पूरा खिल जाता है। बिना काल के नदियों में जल नहीं बहता है। शिशिर, गरमी और वर्षा ऋतुएँ नहीं होतीं हैं। बीज नहीं उगता। सूर्य नहीं आता। अस्त भी नहीं होता। काल से पके हुए सब मानव मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। काल के इस चक्र से कोई नहीं छूटता, लेकिन काल की समझ सभी पुरुषार्थों में सहायक होती है।

भारतभूमि में काल अतिक्रमण की भी परंपरा है। दर्शन में उपनिषद् के ऋषि और शंकराचार्य व योग में पतंजलि—काल का भी अतिक्रमण करते हैं। काल अपना काम करता है, लेकिन पुरुषार्थी अनासक्त भाव से काल को भी चुनौती देते हैं। शीतपीड़ित जनवरी में वसंत जैसी मधुवास नहीं होती है। जनवरी से नया साल तो 1800 के बाद ही मनना शुरू हुआ। आखिरकार, नया साल जनवरी से ही क्यों ? वसंत से क्यों नहीं ? फाल्गुन या चैत्र से क्यों नहीं ? मार्च या अप्रैल से क्यों नहीं ? जनवरी से ही क्यों ? अँगरेजी विद्वानों ने दस माह का कलेंडर बनाया। उनमें झगड़ा हुआ

बाद में जनवरी व फरवरी भी जोड़ दिए। सातवाँ माह सितंबर था, वह नवाँ हो गया। आठवाँ अक्टूबर था, वह दसवाँ हो गया। दिसंबर का अर्थ ही दसवाँ होता है, लेकिन वह बारहवाँ हो गया।

समय की धारा कभी किसी के लिए नहीं रुकती, निरंतर बहती रहती है और इसी क्रम में नया साल हमारे सामने है। न जाने कितने नए साल हमने गुजार दिए हैं, अब यह सोचने का समय है कि इस समय का हम बेहतर उपयोग कैसे करें, ताकि यह हमें अपनी उपलब्धियों की सौगात देकर जाए, यों ही न गुजर जाए। अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए बनाई गई सटीक कार्ययोजनाएँ कामयाबी की राह पर आगे बढ़ने के लिए हमें आत्मानुशासन व एकाग्रता की सौगात देती हैं। तभी तो कहा भी जाता है कि हर उम्र के लोगों के लिए आगे बढ़ने और नए रास्ते बनाने के लिए दिलोदिमाग में एक उद्देश्यपूर्ण योजना का होना आवश्यक है और इसके लिए प्राथमिकताओं के आधार पर काम करना जरूरी है।

इस तरह नववर्ष भारत के विविध धर्मों, भाषाओं व प्रांतों में अलग-अलग दिन, अलग-अलग ढंग से मनाया जाता है, लेकिन प्रतीक रूप में 1 जनवरी से वर्ष की शुरुआत मानते हुए कामना यही होनी चाहिए कि सभी के लिए नया वर्ष शुभ हो व मंगलमय हो। यह वर्ष सभी के लिए खुशियों से भरपूर स्वास्थ्य, निरोगता व आनंद प्रदान करने वाला हो। हम इस वर्ष से फिर से एक सकारात्मक नई शुरुआत करें और सतत आगे बढ़ें, यही नववर्ष का संदेश है। ❑

अमेरिका के प्रसिद्ध न्यायाधीश होम्स जब सेवा-निवृत्त हुए तो उस अवसर पर एक पार्टी का आयोजन किया गया। इस पार्टी में विभिन्न अधिकारी, उनके मित्र, पत्रकार तथा संवाददाता सम्मिलित हुए थे। न्यायाधीश के पद से निवृत्त होने के बावजूद भी उनके चेहरे पर बुढ़ापा नहीं, जवानी झाँक रही थी। पार्टी के दौरान ही एक संवाददाता ने उनसे पूछा—"अब इस वृद्धावस्था में तो आप आराम करेंगे या कुछ और। आपने अपने भावी जीवन का क्या कार्यक्रम बनाया है?"

'वृद्धावस्था' बड़े आश्चर्य से होम्स ने कहा—"क्या मैं वृद्ध दिखाई दे रहा हूँ। वस्तुतः मेरी जवानी तो अब आई है; क्योंकि लंबे समय से जिन कार्यों को मैं टालता रहा था, उन्हें अब प्रारंभ करूँगा।" "कौन से काम टाल रहे थे आप, जिन्हें अब पूरे करेंगे?" "पहला काम तो यह कि बहुत समय से मैं बढ़ई का काम सीखना चाह रहा था, लेकिन अब तक इसका समय ही नहीं मिल पाया। अब बढ़ई का काम सीखने के साथ-साथ मैं विज्ञान का अध्ययन करूँगा, नए-नए खेल सीखूँगा और अपनी मानसिक क्षमताओं का और विकास करूँगा।"

होम्स बोले—"और भले ही मैं बूढ़ा हो जाऊँ तो क्या काम करना छोड़ूँगा थोड़े ही। काम करना छोड़ देने की अपेक्षा मैं मर जाना पसंद करूँगा।" वस्तुतः कर्मनिष्ठा में विश्वास रखने वाले आयु के बंधन में नहीं बँधते। वे सतत उत्साह से भरे रहकर कर्त्तव्यपालन में लगे रहते हैं।

राष्ट्रमंत्र के उद्घोषक स्वामी विवेकानंद

भारतभूमि पवित्र भूमि है, भारत देश मेरा तीर्थ है, भारत मेरा सर्वस्व है, भारत की पुण्यभूमि का अतीत गौरवमय है, यही वह भारतवर्ष है, जहाँ मानव प्रकृति एवं अंतर्जगत के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर पनपे थे। स्वामी विवेकानंद के इन शब्दों से भारत, भारतीयता और भारतवासियों के प्रति उनके प्रेम, समर्पण और भावनात्मक संबंध स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। स्वामी विवेकानंद को युवा सोच का संन्यासी माना जाता है। विवेकानंद केवल आध्यात्मिक पुरुष नहीं थे, वरन वे विचारों और कार्यों से एक क्रांतिकारी संत थे, जिन्होंने अपने देश के युवकों से आह्वान किया था—उठो, जागो और महान बनो।

भारत के प्रति जो अगाध प्रेम स्वामी जी ने अन्य व्यक्तियों में संचारित किया था, वही स्वतंत्रता आंदोलन की मुख्य प्रेरणा थी। नवजीवन प्रकाश कलकत्ता से प्रकाशित भूपेंद्र नाथ दत्त की पुस्तक 'पेट्रिओट प्रॉफिट स्वामी विवेकानंद' में उल्लेख है कि अपनी फ्रांसीसी शिष्या जोसेफाईन मेक्लियाड से स्वामी जी ने कहा था कि क्या निवेदिता जानती नहीं है कि मैंने स्वतंत्रता के लिए प्रयास किया, किंतु देश अभी तैयार नहीं है, इसलिए छोड़ दिया। देश भ्रमण के दौरान पूरे देश के राजाओं को जोड़ने का प्रयत्न भी इस उद्देश्य से स्वामी जी ने किया था, जिसका संकेत उक्त संवाद में मिलता है।

स्वामी विवेकानंद की भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में प्रत्यक्ष रूप से कोई भागीदारी नहीं थी, पर फिर भी आजादी के आंदोलन के सभी चरणों पर उनका व्यापक प्रभाव था। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के पुरोधा थे स्वामी विवेकानंद। उन्होंने अपनी प्रबल तपश्चर्या से सूक्ष्मजगत को इतना मथ डाला था कि भारत की आत्मा जाग उठी थी। इसी का परिणाम था कि जन-जन में स्वतंत्रता की ज्वाला धधक उठी थी। युवाओं में स्वतंत्रता के लिए आत्माहुति के पीछे उन्हीं की प्रेरणा थी। सूक्ष्म स्थूल का आधार होता है। जो सूक्ष्म में घटित होता है, वही कालांतर में स्थूल में होता है। स्वामी विवेकानंद ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए सूक्ष्मजगत को उद्वेलित किया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर विवेकानंद का प्रभाव फ्रांसीसी क्रांति पर रूसो के प्रभाव अथवा रूसी और चीनी क्रांतियों पर कार्ल मार्क्स के पड़े प्रभाव की तुलना में किसी भी तरह से कमतर नहीं था। कोई भी स्वतंत्रता आंदोलन राष्ट्रव्यापी चेतना की पृष्ठभूमि तैयार किए बिना संभव नहीं है। सभी समकालीन स्रोतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना के जागरण में विवेकानंद का सबसे सशक्त प्रभाव था। भगिनी निवेदिता के अनुसार, वे नींव के निर्माण में लगने वाले कार्यकर्त्ता थे। वास्तव में एक ओर वे ज्ञान के, वेदांत के एक जीवंत प्रतीक थे तो उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन के प्रतीक भी थे। अँगरेज पहले ही उनके प्रति आशंकित हो चुके थे। अल्मोड़ा में पुलिस विवेकानंद की गतिविधियों पर निरंतर दृष्टि रख रही थी।

22 मई को श्रीमती एरिक हैमंड को भेजे अपने पत्र में भगिनी निवेदिता ने लिखा—आज सुबह एक भिक्षु को यह चेतावनी मिली थी कि पुलिस अपने जासूसों के द्वारा स्वामी जी पर दृष्टि रख रही है। निस्संदेह, हम सामान्य रूप से इस बारे में जानते हैं, किंतु अब यह और स्पष्ट हो गया है और मैं इसे अनदेखा नहीं कर सकती, यद्यपि स्वामी जी इसे गंभीरता से नहीं लेते हैं। सरकार अवश्य ही मूर्खता कर रही है या कम-से-कम जब ऐसा स्पष्ट हो जाएगा, यदि वह उनसे उलझेगी। वह पूरे देश को जगाने वाली मशाल होगी और मैं इस देश में जीने वाली अब तक की सबसे निष्ठावान अँगरेज महिला, उस मशाल से जागने वाली पहली महिला होऊँगी। हम स्वामी जी के शब्दों का प्रभाव कुख्यात विद्रोह कमेटी की रिपोर्ट में देख सकते हैं। वे कहती हैं कि उनके लेखों और शिक्षाओं ने अनेक सुशिक्षित हिंदुओं पर गहरी छाप छोड़ी है।

ब्रिटिश सीआईडी जहाँ भी किसी क्रांतिकारी के घर की तलाशी लेने जाया करती थी, वहाँ उन्हें स्वयं विवेकानंद जी की पुस्तकें मिलती थीं। प्रसिद्ध देशभक्त क्रांतिकारी ब्रह्मबांधव उपाध्याय और अश्विनी कुमार दत्त ने कहा कि स्वामी जी ने मुझे बंगाली युवाओं की अस्थियों से एक ऐसा

शक्तिशाली हथियार बनाने को कहा था, जो भारत को स्वतंत्र करा सके।

अपनी प्रेरणादायी रचना, 'दि रोल ऑफ ऑनर एनेक्डोट ऑफ इंडियन मार्टियर्स' में कालीचरण घोष बंगाल के युवा क्रांतिकारी के मन पर स्वामी जी के प्रभाव के बारे में लिखते हैं, स्वामी जी के संदेश ने बंगाली युवाओं के मनों को ज्वलंत राष्ट्रभक्ति की भावना से भर दिया और उनमें से कुछ में कठोर राजनीतिक गतिविधि की प्रवृत्ति उत्पन्न की। स्वामी विवेकानंद के बौद्धिक जगत में तैयार किए गए विक्षोभ के वातावरण के विस्फोट का आभास उनके देहांत के बाद बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में श्रीअरविंद के उद्‌भव के रूप में सामने आया। भगिनी निवेदिता ने स्वामी विवेकानंद के देशभक्ति और राष्ट्रनिर्माण के आदर्शों को एक आधारभूत संबल प्रदान किया। ऐसे देखें तो स्वामी विवेकानंद राष्ट्रीय स्वाधीनता के पुरोधा व नायक थे। ❑

असम के राजा के पास वानप्रस्थी शंकरदेव की शिकायत अनेक ब्राह्मण-पुरोहित आदि लेकर पहुँचे। राजा ने वस्तुस्थिति जानने के लिए शंकरदेव को बुलाया। शंकरदेव के उज्ज्वल व्यक्तित्व तथा प्रतिभा से राजा स्वयं भी प्रभावित हो गए। उन्हें समझते देर न लगी कि कायस्थ परिवार में जन्मा यह व्यक्ति वस्तुतः वह कर रहा है, जो यथार्थ में ब्राह्मणों को करना चाहिए। कथित ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य कर्म छोड़ ही नहीं बैठे हैं, बल्कि मनोविकारों से ग्रसित हो चुके हैं। संत शंकरदेव को इस प्रकार राजदरबार में बुलाने का राजा को क्षोभ हुआ तथा उन्होंने उनसे क्षमा माँगकर विदा किया।

इसके उपरांत शंकरदेव चल पड़े—शंकराचार्य की तरह भारतयात्रा के लिए। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर विभिन्न धर्मकृत्यों को देखा, धर्मग्रंथों को सुना तथा महात्माओं से सत्संग किया। इस प्रयास में उन्हें भारत के विभिन्न भागों के रीति-रिवाज तथा निवासियों के अध्ययन का अवसर मिला। उन्हें यह देखकर पीड़ा हुई कि अनेक स्थानों पर धर्म को सही ढंग से नहीं समझा जा रहा है। समाज में भेद-बुद्धि देखकर भी उन्हें हार्दिक कष्ट हुआ, किंतु उन्होंने यह भी देखा कि सभी विविधताओं के बीच मौलिक एकता अभी भी जीवित है। उसे सँभाला-सँजोया जा सकता है। अतः इस प्रकार से उन्हें अपने कार्य के लिए बहुत बल मिला। उन्हें लगने लगा कि कोई सही योजना असम को निश्चित रूप से सूत्रबद्ध कर सकती है। वे और भी आतुरता से अपने शोध-कार्य में लग गए।

नौगाँव आकर उन्होंने स्थिति पहले की अपेक्षा और भी बिगड़ी हुई पाई। मुसलमान आक्रमण के कारण न केवल राजनीतिक संकट खड़ा हो गया था, वरन हिंदू शब्द से युक्त सब कुछ हिंदू कला, संस्कृति, चरित्र, सभ्यता, धर्म तथा जीवन सभी खतरे में थे, किंतु आत्मबल के धनी शंकरदेव विचलित न हुए। उन्होंने धीरे-धीरे अपना कार्य प्रारंभ किया। त्रस्त प्राणियों को शांति मिली, शुष्क हृदयों में सरसता का संचार हुआ, हारे मन वाले अँगड़ाई लेकर खड़े हो गए और उनका कार्य बढ़ता ही गया, पनपता ही गया। उनकी लोक-आराधना की सेवा-साधना फलित हुई। सारा असम जाग्रत हो गया।

कैसे करें अचेतन का परिष्कार

अच्छे कर्मों का परिणाम अच्छा होता है और बुरे कर्मों का परिणाम बुरा होता है। इस सत्य को अधिकांशतः लोग जानते व समझते हैं, पर यह जानते हुए भी लोग बुरे कर्म क्यों करते हैं? पापकर्म क्यों करते हैं? संसार में कोई भी व्यक्ति दुःख नहीं पाना चाहता है, फिर व्यक्ति दुःख देने वाले कर्म करता ही क्यों है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो बरबस हमें कुछ सोचने पर मजबूर करते हैं। ये प्रश्न हमें चिंता और चिंतन में डालते हैं। हम बुरे लोगों को बुरे कर्म करते हुए देखते हैं और इसमें हमें कोई आश्चर्य भी नहीं होता। कभी-कभी ऐसा भी होता है जो लोग बुरे नहीं हैं और बुरे कर्म करना नहीं चाहते, वे भी बुरे कर्मों में लिप्त हो जाते हैं।

ऐसा क्यों है? इसकी मूल वजह क्या है? यह सच है कि कोई भी विचारवान व्यक्ति पापकर्म, अशुभ कर्म, बुरे कर्म नहीं करना चाहता; क्योंकि वह जानता है कि पाप का परिणाम दुःख होता है और कोई भी व्यक्ति दुःख नहीं पाना चाहता। पापवृत्ति के उत्पन्न होने पर पापी व्यक्ति तो उसमें लिप्त हो जाता है, पर विचारशील व्यक्ति उस पाप को जानता हुआ उससे सर्वथा दूर रहना चाहता है, पर फिर भी वह उस पाप में ऐसे लिप्त हो जाता है, जैसे कोई उसको बलात् पापकर्म में लगा रहा हो।

जैसा कि महाभारत के प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन ने कहा है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनोपि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

अर्थात मैं धर्म को जानता हूँ, पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और मैं अधर्म को भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। मेरे हृदय में स्थित कोई देव है, जो मेरे से जैसा करवाता है, वैसा ही मैं करता हूँ। इस प्रकार नीति-अनीति, धर्म-अधर्म क्या है—दुर्योधन यह जानता था, परंतु फिर भी धर्म में कभी उसकी रुचि नहीं हुई, प्रवृत्ति नहीं हुई और अधर्म करने में उसे कभी ग्लानि नहीं हुई तो आखिरकार वह कौन-सी प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति को बलात् पापकर्म में प्रवृत्त करती है? अर्जुन के मन में भी कुछ इसी प्रकार के प्रश्न उठ रहे थे, सो उन्होंने भगवान कृष्ण से पूछा—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

—गीता, 3/36

अर्थात अर्जुन बोले, हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाए हुए की भाँति किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता रहता है? अर्जुन के इस सारगर्भित प्रश्न के उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥
इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥
तस्मात्त्वामिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

—गीता, 3/37-43

अर्थात श्रीभगवान बोले, रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात भोगों से कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषय में वैरी जान। जिस प्रकार धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण

ढका रहता है तथा जिस प्रकार जेर से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है।

हे अर्जुन! इंद्रियाँ, मन और बुद्धि ये सब कभी न तृप्त होने वाली काम रूप अग्नि के वासस्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इंद्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है और फिर उसी के प्रभाव में आकर जीवात्मा न चाहते हुए भी पाप का आचरण करता है, पापकर्म में प्रवृत्त होता है। इसलिए हे अर्जुन! तू पहले इंद्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले पापी काम को अवश्य ही मार डाल। इंद्रियों को स्थूलशरीर से पर अर्थात श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म कहते हैं; इन इंद्रियों से पर मन है, मन से भी पर बुद्धि है और जो बुद्धि से भी अत्यंत पर है—वह आत्मा है। इस प्रकार जो बुद्धि से भी पर अर्थात सूक्ष्म, बलवान और अत्यंत श्रेष्ठ आत्मा है, उसे जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो! तू इस काम रूप दुर्जय शत्रु को मार डाल।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पापकर्मों में प्रवृत्ति का मूल कारण है कामवासना। व्यक्ति के अचेतन में बीज रूप में व्याप्त कामवासना और सांसारिक सुख भोग तथा संग्रह की कामना ही वे कारण हैं, जो व्यक्ति को पापकर्म में प्रवृत्त करते हैं। अपनी इस पापवृत्ति का ज्ञान न होने के कारण व्यक्ति को यह पता ही नहीं चलता कि उससे बलात् पाप कराने वाला है कौन? वह कौन है, जो हर पल उसे इस तरह के पापकर्म करने को प्रेरित करता है?

वह तो यही समझता है कि मैं तो पाप को जानता हूँ और उससे दूर रहना चाहता हूँ, पर कोई है जो मुझको बलपूर्वक पाप में प्रवृत्त करता है। अस्तु व्यक्ति को पाप कर्म में प्रवृत्त करने वाली कामना, वासना ही हैं, जिनकी जड़ें बहुत गहराई तक व्यक्ति के अचेतन में हैं। अस्तु जो पाप-वृत्ति का मूल कारण है; जड़ है, उसे ही जड़सहित समाप्त करना होगा।

वस्तुतः व्यक्ति जिस प्रकार फल भोगने में प्रारब्ध के अधीन है, वैसे ही नए कर्म करने में वह अपने कर्म संस्कारों के अधीन है। जन्म-जन्मांतरों से संचित कर्मों के अनुसार जीवात्मा का जैसा स्वभाव बना हुआ है, वह अपने उसी स्वभाव के अधीन होकर वैसे ही कर्मों में लिप्त होता है। यदि जीवात्मा के जन्म-जन्मांतरों के संचित संस्कार शुभ हैं, तो वह अपने वर्तमान जीवन में उन्हीं शुभकर्मों के प्रभाव में रहकर शुभकर्मों, पुण्यकर्मों में लिप्त होता है। वह स्वभावतः ही पुण्यकर्मों में रुचि लेता है। उसकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। पर यदि हमारे संचित संस्कार अशुभ हैं, पापपूर्ण हैं तो हम अपने वर्तमान जीवन में उन्हीं संस्कारों के प्रभाव में आकर पापकर्मों में लिप्त रहते हैं, हमारी प्रवृत्ति वैसे ही कर्मों में होती है, पुण्यकर्मों-शुभकर्मों में नहीं।

हम सन्मार्ग पर चलना तो चाहते हैं और नित्य इसके संकल्प भी लेते हैं, पर हमारे अचेतन का संस्कार हमें अपनी ही ओर खींचता है। इसलिए अचेतन को बदले बिना जो बाह्य दृष्टि से, वेश-विन्यास से स्वयं को बदलने का प्रयास करते हैं, वे अंदर से बदल नहीं पाते; क्योंकि उनका बदलाव उनके अचेतन के विरोध पर टिका है। ऐसे लोग धर्म के मार्ग पर, सचाई के मार्ग पर चलने का, धार्मिक-आध्यात्मिक होने का स्वांग भले ही रचते रहें, अभिनय भले ही करते रहें, पर उनमें वास्तविक बदलाव तब तक संभव नहीं है, जब तक उनका अचेतन उनके बदलाव को स्वीकार न कर ले।

हमारे अचेतन के संस्कार, हमारे चित्त के संस्कार इतने प्रबल हैं, सबल हैं कि उनके सामने हमारे संकल्प टिक नहीं पाते। इसलिए जीव जन्म-जन्मांतरों से अपने अचेतन के, चित्त के उन्हीं प्रबल संस्कारों के वेग में बहा जा रहा है। जीव राम को पाना चाहता है, पर उसका अचेतन उससे काम चाहता है, भोग चाहता है, लोभ चाहता है, मोह चाहता है। पर ये दोनों एक साथ कैसे संभव हैं? जैसा कि कहा गया है—

जहाँ राम तहँ काम नहिं,
जहाँ काम नहिं राम।

अर्थात जहाँ राम है, वहाँ काम हो नहीं सकता। और जहाँ काम है, वहाँ राम का होना संभव नहीं। वैसे ही जैसे अंधकार और प्रकाश दोनों एक साथ नहीं रह सकते। कभी न तृप्त होने वाली, कभी न पूर्ण होने वाली काम-वासना की अग्नि हमारे अचेतन में सुलग रही है, पर उसे बुझाने के बजाय हम उस अग्नि से उठते धुएँ को रोकना चाहते हैं और उस धुएँ को रोककर कामवासना से मुक्त होना चाहते हैं। अपने जीवन को बदलना चाहते हैं, पर धुएँ का जो मूल स्रोत है, उसे समाप्त किए बगैर धुएँ को रोकना कैसे संभव है।

अस्तु धुएँ का मूल स्रोत अचेतन में सुलग रही जो कामवासना की अग्नि है, उसे बुझाना जरूरी है और उसके बुझते ही उससे उठने वाला धुआँ स्वयं ही समाप्त हो जाएगा। तब उसके बुझते ही हमारे अंदर एक नए मनुष्य का जन्म होगा, जो सचमुच प्रकृति से पूर्णत: बदला हुआ होगा। वैसे ही जैसे रत्नाकर पूर्णत: बदल गए और महर्षि बन गए। अंगुलिमाल बदल गए और भिक्षु बन गए। तब हमें स्वयं को बदलने के लिए किसी बाह्य आडंबर की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। फिर हम जैसा भी बनना चाहें बन सकते हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही करता है और फिर वह वैसा ही बन जाता है। विदुर नीति कहती है—

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुन: पुन:।
नष्टप्रज्ञ: पापमेव नित्यमारभते नर:॥
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुन: पुन:।
वृद्धप्रज्ञ: पुण्यमेव नित्यमारभते नर:॥

अर्थात बार-बार पाप करने से मनुष्य की विवेक-बुद्धि नष्ट हो जाती है और जिसकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो चुकी है, ऐसा व्यक्ति हमेशा पाप ही करता है। उसी प्रकार बार-बार पुण्य करने से मनुष्य की विवेक-बुद्धि बढ़ती है और जिसकी विवेक-बुद्धि बढ़ती रहती है, पवित्र हो चुकी होती है, वह व्यक्ति हमेशा पुण्यकर्म ही करता है।

हमारे धर्मशास्त्रों, योगशास्त्रों में ऐसे अगणित प्रामाणिक, प्रायोगिक उपाय हैं, जिनके प्रयोग से हम स्वभावत: ही साधुता, शुद्धता तथा बुद्धता को प्राप्त कर सकते हैं। हम अपनी प्रवृत्ति को पुण्यदायी, शुभदायी बना सकते हैं, और अपने जीवन को आनंददायी बना सकते हैं। अपने चित्त का, अपने अचेतन का परिष्कार कर हम सचमुच स्वयं को पूर्णत: बदल सकते हैं। जैसे—जब हम किसी वस्तु को ऊपर की ओर उछालते हैं तो वह पुन: धरती पर आ गिरती है। क्यों? क्योंकि वह धरती की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव में होती है। इसलिए वह शक्ति उसे बार-बार अपनी ओर खींचती है और जमीन पर ला पटकती है। पर वह वस्तु जब गुरुत्वाकर्षण शक्ति की सीमा के पार चली जाती है, तब उसका ऊँचाई की ओर गमन करना आसान हो जाता है। अंतरिक्ष में रहते हुए अंतरिक्षयात्री का शरीर भारहीन हो जाता है, इसलिए अंतरिक्ष में रहते हुए वह अपने शरीर के भार को महसूस नहीं कर सकता। इसलिए वहाँ सारी चीजें हवा में तैरती रहती हैं। इसी तरह अचेतन का परिष्कार करने पर, कर्म संस्कारों के शिथिल होने पर हमारा रूपांतरण हो जाता है एवं हम एक दिव्य जीवन की राह पर चल पड़ते हैं। ❑

हमारा जीवन समाज का दिया हुआ है। वह हमारी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है, बल्कि समाज, विश्व विराट की एक धरोहर है। इसका उपयोग समाज और राष्ट्र के कल्याण तथा उसके हित के लिए ही होना चाहिए। इस तथ्य को तभी चरितार्थ किया जा सकता है, जब हम यह आधार लेकर चलें कि हमारा जीवन अपने व्यक्तिगत रूप में भले ही कुछ कष्टपूर्ण क्यों न हो, पर दूसरों का सुख और दूसरों की सुविधा तथा दूसरों का क्लेश, हमारा सुख-क्लेश है। यह परमार्थ भाव मनुष्य में जिस व्यक्तित्व का विकास करता है, वह बड़ा आकर्षक होता है। इतना आकर्षक होता है कि समाज की शक्ति और विकासमूलक सद्भावनाएँ अपने आप खिंचती चली आती हैं। पूरा समाज उसका अपना परिवार बन जाता है। ऐसी बड़ी उपलब्धि मनुष्य को फिर किस ऊँचाई तक नहीं पहुँचा सकती।

—परमपूज्य गुरुदेव

बारिश की बूँदों की महत्ता

इन दिनों तमाम अध्ययन चीख-चीखकर वर्तमान में व्याप्त भयावह जल संकट की ओर इशारा कर रहे हैं। देश में प्रतिव्यक्ति जल उपलब्धता पिछले साल में लगभग 70 फीसदी कम हो चुकी है। देश की सालाना जल-जरूरत तीन हजार अरब घनमीटर है; जबकि हर साल चार हजार अरब घनमीटर पानी बारिश के रूप में धरती को नसीब हो पाता है।

मुश्किल यह है कि हम 1.3 अरब लोग इस बारिश का केवल आठ फीसद ही सहेज पाते हैं। इस पानी को सहेजने का उपक्रम हमें बढ़ाना चाहिए। जितना ज्यादा पानी अपने अपनों की खातिर सहेजेंगे, हमारा जल बजट उतना ही शानदार होगा। जल का प्रभावी प्रबंधन करें, बरबाद न करें। आधे गिलास की दरकार है तो एक गिलास पानी से इनकार करें।

बारिश की बूँदों का माहात्म्य उस रेगिस्तानवासी से पूछिए, जहाँ एक पीढ़ी ने आसमान से छलकते इस अमृत को नहीं देखा है। यह हमारा सौभाग्य है कि हर साल हमारी जल-जरूरत से एक हजार अरब घनमीटर ज्यादा पानी बारिश के रूप में देश के भौगोलिक क्षेत्र में बरस जाता है।

पहले जगह-जगह ताल, तलैया, पोखर और झीलों के साथ नदी जैसे जलस्रोत थे, जो इस बारिश का अधिकांश हिस्सा खुद में पैवस्त कर लेते थे। जो धीरे-धीरे रिसकर धरती के पेट में समाधिस्थ होता रहता था। इससे भूजल स्तर ऊँचा बना रहता था। इन जलस्रोतों में सतह पर मौजूद पानी सिंचाई सहित जानवरों के पीने इत्यादि के काम में लिया जाता था। इससे भूजल पर बहुत भार भी नहीं पड़ता था।

आज हालात बदल गए हैं। अमूमन जलस्रोत बचे ही नहीं, जो हैं वहाँ पानी की जगह दूसरी तमाम चीजें की जा रही हैं। पार्किंग बन गई हैं, रिहायश तैयार है, खेती हो रही है। इसके इतर जो जमीन है, उसका अधिकांश हिस्से का कंकरीटीकरण किया जा चुका है। लिहाजा एकत्र हुआ पानी रिसकर धरती की गोद में समा नहीं पाता है। दूसरी बात यह ज्यादा दिन तक ठहरता भी नहीं, नालों के साथ बहकर नदियों से होते हुए समुद्र में जाकर नमकीन हो जाता है। इस पूरे दुष्चक्र को बदलने के लिए हमें अपने आचार, विचार और व्यवहार में समग्र रूपांतरण लाना होगा, तभी हमारी भावी पीढ़ियाँ इस संकट से मुक्त हो सकेंगी।

हम भारतीय जल की तनाव वाली श्रेणी (वाटर स्ट्रेस्ड) में आते हैं। सन् 1951 में देश में प्रतिव्यक्ति जल-उपलब्धता 5177 घनमीटर थी; जबकि सन् 2011 की जनगणना के आँकड़े बताते हैं कि यह अब घटकर 1545 घनमीटर हो चुकी है अर्थात पिछले साठ साल में प्रतिव्यक्ति जल-उपलब्धता में 70 फीसदी की गिरावट आ चुकी है।

अगर कहीं पर जल-उपलब्धता 1700 घनमीटर से कम रह जाती है तो अंतरराष्ट्रीय मानकों के हिसाब से उस क्षेत्र को वाटर स्ट्रेस्ड की श्रेणी में डाल दिया जाता है। सरकारी अध्ययन बताते हैं कि भारत जलवंचित श्रेणी की तरफ तेजी से बढ़ रहा है। यह उस दशा को कहते हैं, जब जल-उपलब्धता एक हजार घनमीटर से कम रह जाती है। सन् 2001 में देश की औसत सालाना प्रतिव्यक्ति जल-उपलब्धता 1820 घनमीटर थी।

सरकार का आकलन है कि सन् 2025 तक यह 1341 घनमीटर रह जाएगी। स्थिति तो तब विकट होगी, जब इसी अनुमान के मुताबिक सन् 2050 तक इसकी मात्रा 1140 घनमीटर रह जाएगी। केंद्रीय जल आयोग के अनुसार भारत की सालाना जल-जरूरत 3000 अरब घनमीटर है। देश में सालाना औसतन 4000 अरब घनमीटर की बारिश होती है। दुःखद यह है कि 130 करोड़ लोग इन अनमोल बूँदों के तीन-चौथाई हिस्से का भी सदुपयोग नहीं कर पाते हैं। जिसके चलते यह हर साल बरबाद हो जाता है। एकीकृत जल संसाधन विकास पर गठित राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट बताती है कि लोगों द्वारा सालाना बारिश का कुल 1123 अरब घनमीटर पानी का इस्तेमाल हो पाता है। इसमें 690 अरब घनमीटर सतह पर मौजूद जल है और 433 अरब घनमीटर जल रिसकर भूजल में मिलता है। बाकी सब व्यर्थ चला जाता है। इस बरबाद होने वाले पानी को बचाकर हम निश्चित रूप से पानीदार बन सकते हैं।

पेयजल के लिए सर्वाधिक इसी का इस्तेमाल होता है, लेकिन देश की 80 फीसदी सिंचाई धरती की कोख को सुखाकर की जा रही है। ज्यादातर किसानों और उद्योगों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार इन दोनों मदों में देश के कुल भूजल का 12 फीसदी हिस्सा खरच किया जा रहा है। इन लोगों को अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भूजल का इस्तेमाल सबसे आसान तरीका लगता है।

इसी सोच ने भारत को सबसे अधिक भूजल दोहन करने वाला देश बना दिया है। भूजल दोहन के मामले में दूसरे नंबर पर चीन और तीसरे नंबर पर अमेरिका के संयुक्त योग से भी ज्यादा भारत इसका दोहन कर रहा है। विडंबना यह है कि भारत जितना भूजल दोहन करता है, उसका सिर्फ आठ फीसदी ही पेयजल के रूप में इस्तेमाल कर पाता है। भारत का अधिकांश भूजल गुणात्मक रूप से अभी पीने लायक है; जबकि अन्य स्रोतों का पानी प्रदूषित हो चुका है। उनके शुद्धिकरण की जरूरत होती है। समस्या इसलिए जटिल हो रही है; क्योंकि देश की सिंचाई-प्रणाली की कुशलता निम्न स्तर की है।

सिंचाई के लिए जितना पानी इस्तेमाल होता है, उसमें से करीब 60 फीसदी बरबाद हो जाता है। सरकारी अध्ययन बताते हैं कि देश का भूजल स्तर 0.3 मीटर सालाना की दर से गिर रहा है। एक अनुमान के मुताबिक सन् 2002 से सन् 2008 के बीच भारत ने 109 घन किमी. भूजल का इस्तेमाल किया है। यह देश के सबसे बड़े सतही जलाशय अपर वैनगंगा की क्षमता से दोगुना है। लिहाजा सिंचाई के लिए अन्य स्रोतों का इस्तेमाल बढ़ाकर भूजल के दबाव को कम किए जाने की जरूरत है।

एक सार्वभौमिक विलायक, शीतलक और सफाई करने वाले तत्त्व के रूप में पानी उद्योगों की अनिवार्य जरूरत है। ज्यादातर उद्योगों ने भूजल निकालने के लिए खुद के बोरवेल लगा रखे हैं। अत्यधिक दोहन के चलते कई बार इन उद्योगों को पानी न मिलने के कारण कारोबार ठप भी करना पड़ता है। वर्ल्ड रिसोर्स इन्स्टीट्यूट की एक रिपोर्ट के अनुसार, सन् 2013 से सन् 2016 के बीच 14 से 20 थर्मल पावर प्लांट को पानी की किल्लत के चलते अपना काम बंद करना पड़ा था।

उद्योगों को भी पानी इस्तेमाल के विकल्पों को तलाशना होगा अथवा जितना पानी सालभर इस्तेमाल करते हैं, उतनी मात्रा का धरती में पुनर्भरण करना पड़ेगा; तभी समस्या से निजात मिल सकती है। ऐसा अनुमान है कि हमारे घरों में इस्तेमाल होने वाला 80 फीसदी पानी बरबाद हो जाता है। अधिकांश मामलों में इस पानी को शुद्ध करके दूसरे या कृषिकार्यों में इसका इस्तेमाल नहीं हो पाता है।

इजरायल और ऑस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं है। इजरायल अपने इस्तेमाल पानी का शत-प्रतिशत शुद्धीकरण करता है और घर में इस्तेमाल होने वाले पानी के 94 फीसदी को रिसाइकिल किया जाता है। वाटर प्यूरीफायर का कारोबार भारत में तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन इससे होने वाले पानी का नुकसान चिंताजनक है। आरओ से एक लीटर पानी हासिल करने के लिए चार लीटर पानी की जरूरत होती है।

मैसाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी द्वारा अहमदाबाद में किए गए एक अध्ययन के अनुसार आरओ आधारित वाटर प्यूरीफायर 74 फीसदी पानी का नुकसान करते हैं। ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टेंडर्स से पंजीकृत 6000 कंपनियाँ देश में बोतलबंद पानी के कारोबार से जुड़ी हुई हैं। औसतन हर घंटे एक कंपनी 5 हजार लीटर से 20 हजार लीटर पानी धरती से निकाल रही है। सालाना 15 फीसदी की दर से बढ़ रहे इस उद्योग से पानी के इस्तेमाल में बरबादी की दर करीब 35 फीसदी है।

भविष्य के हालातों को ध्यान में रखकर जागरूक लोगों ने अभी से पानी के प्रबंधन हेतु कमर कसनी शुरू कर दी है। अलग से जलशक्ति मंत्रालय गठित हो चुका है। स्वच्छ भारत मिशन की तरह 256 जिलों में इस अभियान को चलाने की सरकार की दृढ़ इच्छाशक्ति दिख चुकी है। सरकार ने पानी के प्रबंधन का खाका तैयार कर लिया है। पानी नहीं होगा, तो विकास पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। सरकार ने अपनी पानी की योजना बना ली है, परंतु समाज कब बनाएगा? इसके लिए जल प्रबंधन के प्रति जागरूकता की आवश्यकता है। अनमोल जल का मोल, हम सभी को समझना होगा। ❑

भारत के रहस्यमय मंदिर

भारतीय संस्कृति में देवालयों का बड़ा महत्त्व है। देवालय यानी जहाँ देवताओं का वास है। इन्हें मंदिर भी कहा जाता है। हमारे देश में प्राचीनकाल से ही मंदिरों का निर्माण शुरू हो गया था और वास्तु व खगोलज्ञान को ध्यान में रखकर इनका निर्माण किया जाता था। वर्तमान में भी इन प्राचीन मंदिरों का सौंदर्य, मजबूती व बनावट देखने में लोगों को अचंभित करती है। लोग इन मंदिरों की ओर आकर्षित होते हैं और इन स्थलों में जाकर सुकून, शांति व सकारात्मक ऊर्जा की अनेक धाराओं को महसूस करते हैं। प्राय: मंदिरों के निकट जलाशय होते हैं, जो इनकी महत्ता को और भी बढ़ा देते हैं।

मंदिर यानी ऐसा स्थल जहाँ देवप्रतिमा का निवास हो, उसमें प्राणप्रतिष्ठा हो, उसमें विधिवत् पूजा-आराधना होती हो। ऐसा होने पर मंदिर जीवंत एवं जाग्रत हो जाते हैं और ये लोगों की मनोकामनाओं की पूर्ति में भी सहायक होते हैं। जिन लोगों को इन मंदिरों व मूर्तियों के विज्ञान के बारे में जानकारी नहीं है, उन्हें यह लग सकता है कि ये मात्र भौतिक संरचनाएँ हैं, लेकिन हमारे पूर्वजों ने इनका निर्माण एक सकारात्मक ऊर्जा-क्षेत्र के रूप में किया था, जहाँ कुछ क्षण बैठकर गुणवत्तापूर्ण जीवन जीने के लिए ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय संस्कृति में मूर्ति निर्माण के पीछे एक पूरा विज्ञान है। मूर्ति में एक खास तरह की आकृति एक खास तरह के पदार्थ या तत्त्वों से मिलकर बनाई जाती है। अलग-अलग मूर्तियाँ या प्रतिमाएँ अलग-अलग तरीके से बनती हैं और उन्हें जाग्रत करने के लिए कुछ खास जगहों पर चक्रों को स्थापित किया जाता है। इसी तरह भारत में मंदिरों के निर्माण के पीछे भी एक गहन विज्ञान है। यदि मंदिरों के मूलभूत पक्षों, जैसे—प्रतिमाओं का आकार और आकृति, प्रतिमाओं द्वारा धारण की गई मुद्रा, परिक्रमा, गर्भगृह और प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने के लिए किए गए मंत्रोच्चारण आदि में समुचित समन्वय का ध्यान रखा जाए, तो इससे एक शक्तिशाली ऊर्जातंत्र तैयार हो जाता है।

प्राचीनकाल में मंदिरों का निर्माण कुछ विशेष तरह से होता था, जिससे वे ब्रह्मांड की सकारात्मक ऊर्जा को अधिक-से-अधिक धारण कर सकें और इस ऊर्जा से जनसामान्य लाभान्वित हो सके। भारत देश में एक से बढ़कर एक ख्यातिप्राप्त मंदिर हैं और उन मंदिरों की महिमा भी बहुत है। हर मंदिर के निर्माण के पीछे एक कथा-कहानी है, जो उसके उद्‌गम का रहस्य बताती है। इन्हीं मंदिरों में दो विशेष मंदिर हैं—उड़ीसा में कोणार्क का सूर्य मंदिर और हरियाणा के यमुनानगर में स्थित सूर्यकुंड मंदिर।

भारत के ये दो मंदिर ऐसे हैं, जहाँ सूर्यग्रहण का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता; अर्थात भारत में यदि कभी सूर्यग्रहण हो, तो उस समय भी ये दोनों मंदिर खुले रहते हैं। उड़ीसा में कोणार्क का सूर्य मंदिर अंतरराष्ट्रीय पर्यटनस्थल है। यहाँ विश्वस्तर के खगोलशास्त्री सूर्यग्रहण के अवसर पर सूर्यग्रहण का अद्‌भुत नजारा देखने के लिए आते हैं। यह मंदिर उड़ीसा के पूर्वी जिले में चंद्रभागा नदी के किनारे कोणार्क में स्थित है।

पुराणों के अनुसार—श्रीकृष्ण के पुत्र सांब को उनके शाप से कोढ़ रोग हो गया था। सांब ने मित्रवन में चंद्रभागा नदी के सागर संगम पर कोणार्क में, बारह वर्ष तक तपस्या की और सूर्यदेव को प्रसन्न किया। सूर्यदेव, जो सभी रोगों के नाशक थे, उन्होंने उनके इस रोग का भी अंत किया। तत्पश्चात सांब ने सूर्यदेवता के सम्मान में कोणार्क मंदिर का निर्माण करवाया।

ठीक इसी तरह का पौराणिक आख्यान सूर्यकुंड मंदिर का भी है। यह मंदिर हरियाणा के यमुनानगर में एक अमादलपुर गाँव में है। इस मंदिर पर भी सूर्यग्रहण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिए सूर्यग्रहण के दिन अनेक साधु-संत और श्रद्धालु दूर-दूर से यहाँ माथा टेकने के लिए आते हैं।

मंदिर के पुजारी के अनुसार—सूर्यग्रहण के समय मंदिर के प्रांगण में आने वाले किसी भी प्राणी पर ग्रहण का कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि मंदिर के प्रांगण में सूर्यकुंड इस प्रकार से बना है कि इसमें जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं

तो वे कुंड में ही समा जाती हैं। इस मंदिर का इतिहास त्रेतायुग से संबंधित है। ऐसी मान्यता है कि सूर्यवंश के राजा मांधाता ने सौभरि ऋषि को आचार्य बनाकर राजसूय यज्ञ किया था। मांधाता के ऋषि ने यज्ञभूमि को खुदवाकर उसमें पानी भरवा दिया और इस कुंड का नाम सूर्यकुंड रख दिया। मंदिर की ऐसी मान्यता है कि यहाँ के सूर्यकुंड में स्नान करने से सभी रोग दूर हो जाते हैं।

इसी तरह भारत में अनेक रहस्यमय मंदिर हैं, जिनका रहस्य आज तक कोई नहीं जान पाया है, इनमें सबसे पहले है—कामाख्या मंदिर, यह असम के गुवाहाटी में स्थित, देवी के 51 शक्तिपीठों में से सबसे अधिक प्रसिद्ध है, लेकिन इस मंदिर में देवी की मूर्ति नहीं है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार इस स्थल पर देवी सती की योनि गिरी थी, जो कि समय के साथ साधनास्थल का केंद्र बनी है।

इस स्थल पर लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, इसलिए इस मंदिर को कामाख्या मंदिर कहा जाता है। यह मंदिर तीन हिस्सों में बना हुआ है, इसका पहला हिस्सा सबसे बड़ा है, जहाँ हर व्यक्ति को जाने की अनुमति नहीं है, दूसरे हिस्से में माता के दर्शन होते हैं, जहाँ एक पत्थर से हर समय पानी निकलता है और ऐसा कहते हैं कि वर्ष में एक बार इस पत्थर से रक्त की धारा निकलती है, ऐसा क्यों और कैसे होता है ?—यह आज तक किसी को ज्ञात नहीं है।

दूसरा रहस्यमय मंदिर है—करणीमाता का मंदिर, इस मंदिर को चूहों वाली माता का मंदिर भी कहा जाता है, जो राजस्थान के बीकानेर में 30 किलोमीटर दूर देशनोक शहर में स्थित है। करणीमाता इस मंदिर की अधिष्ठात्री देवी हैं, जिनकी छत्रछाया में इन चूहों का साम्राज्य स्थापित है। इन चूहों में अधिकांश काले चूहे होते हैं, लेकिन कुछ सफेद और दुर्लभ चूहे भी होते हैं। ऐसी मान्यता है कि जिसे यहाँ सफेद चूहा दिख जाता है, उसकी कामना अवश्य पूरी होती है। आश्चर्यजनक बात यह है कि ये चूहे बिना किसी को नुकसान पहुँचाए मंदिर के परिसर में भागते, दौड़ते और खेलते रहते हैं। ये लोगों के शरीर पर कूद-फाँद भी करते हैं, लेकिन किसी को नुकसान नहीं पहुँचाते। यहाँ पर चूहे इतनी संख्या में हैं कि लोग यहाँ पर अपने पाँव उठाकर नहीं चल सकते, बल्कि पाँव घसीटकर चलते हैं, लेकिन मंदिर के बाहर ये चूहे कभी नजर नहीं आते।

तीसरा रहस्यमय मंदिर है—ज्वालामुखी मंदिर। यह मंदिर हिमाचल प्रदेश की कालीधार पहाड़ियों में स्थित है। यह मंदिर भी भारत के 51 शक्तिपीठों में से एक है। ऐसी मान्यता है कि इस स्थान पर माता सती की जीभ गिरी थी। माता सती की जीभ के प्रतीक के रूप में यहाँ धरती के गर्भ से ज्वालाएँ निकलती हैं, जो नौ रंगों की हैं। इन नौ रंगों की ज्वालाओं को देवी के नौ रूपों का प्रतीक माना जाता है। किसी को भी यह ज्ञात नहीं है कि ये ज्वालाएँ कहाँ से प्रकट हो रही हैं और इन ज्वालाओं में रंग-परिवर्तन कहाँ से हो रहा है। आज भी लोगों को यह पता नहीं चल पाया है कि ये ज्वालाएँ लगातार प्रज्वलित क्यों हैं और कब तक जलती रहेंगी ?

चौथा रहस्यमय मंदिर है—कालभैरव का मंदिर। यह मंदिर मध्यप्रदेश के शहर उज्जैन से लगभग 8 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। परंपरा के अनुसार यहाँ पर श्रद्धालु भगवान कालभैरव को प्रसाद के रूप में केवल मद्य ही चढ़ाते हैं।

पाँचवाँ रहस्यमय मंदिर है—मेंहदीपुर का बालाजी मंदिर। मध्यप्रदेश के ही मेंहदीपुर जिले में स्थित यह मंदिर हनुमान जी के दस प्रमुख सिद्धपीठों में से एक माना जाता है। मान्यता है कि इस स्थान पर हनुमान जी जाग्रत अवस्था में विराजते हैं। इस मंदिर के परिसर के भीतर आते ही भूत-प्रेत बाधा से संबंधित लोगों को तत्काल राहत मिलती है।

छठवाँ रहस्मय मंदिर है—महाराष्ट्र के शिगणापुर में स्थित शनि मंदिर। यह मंदिर संगमरमर के एक चबूतरे पर स्थित है और इसके चारों ओर मंदिर के समान कोई निर्माणकार्य नहीं है, बल्कि यह चारों ओर से खुला हुआ है और संगमरमर के चबूतरे पर शनिदेव के प्रतीक रूप में पत्थर की एक शिला है। इस स्थल की खास बात यह है कि यहाँ स्थित घरों में कभी चोरी नहीं होती है, इसलिए लोग अपने घरों में दरवाजे और ताले नहीं लगाते हैं। लोगों की मान्यता है कि यहाँ पर जो व्यक्ति चोरी करता है, उसे शनिदेव दंडित करते हैं।

इस तरह भारत में अनेक रहस्यमय मंदिर हैं, जो आज भी लोगों की श्रद्धा का केंद्र बने हुए हैं और अपने प्रभाव से लोगों के विश्वास व आस्था को संबल देते हैं। ❑

पर्यावरण को संरक्षित करता है शाकाहार

मांसाहार भारत ही नहीं, बल्कि विश्व की एक बड़ी जनसंख्या के आहार का अंग है। भारतीय संस्कृति में जहाँ हिंसा, क्रूरता एवं अमानवीयता से जुड़े इसके पहलुओं को देखते हुए इसे घृणित ही नहीं, त्याज्य माना गया है, वहीं मांसप्रेमी लोगों द्वारा इसके पक्ष में पौष्टिकता एवं सांस्कृतिक विरासत के रूप में तमाम दलीलें दी जाती रही हैं। विज्ञान प्रारंभिक दौर में इसके पक्ष में तर्क देता रहा, लेकिन अब समय के साथ इसके स्वर बदलने लगे हैं। विशेषकर स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से मांसाहार के चलन को रोकने व शाकाहार को अपनाने की बात की जा रही है।

शोध के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की दृष्टि से शाकाहार अधिक बेहतर विकल्प है। एक शाकाहारी जहाँ एक एकड़ से भी कम भूमि में निर्वाह कर सकता है, तो वहीं एक मांसाहारी के लिए डेढ़ एकड़ से अधिक भूमि की आवश्यकता होती है। विकसित देशों में मांस उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर पर्यावरण का अतिक्रमण हुआ है। मात्र अमेरिका में 1 किलो गेहूँ उत्पादन के लिए 50 गैलन जल की आवश्यकता रहती है; जबकि इतने ही मांस के लिए 10,000 गैलन पानी की खपत होती है। स्पष्ट होता है कि जितना हम शाकाहार को अपनाएँगे उतना ही पर्यावरण पर दबाव कम पड़ेगा और वह मानव की आवश्यकता को पूरा करने के लिए उपलब्ध होगा। एक आकलन के अनुसार यदि अमेरिका के केवल 10 प्रतिशत व्यक्ति भी मांसाहार बंद कर दें, तो पूरे विश्व की भोजन की आवश्यकता पूरा हो सकती है।

एक अनुमान के अनुसार विश्व में एक एकड़ भूमि में 8,000 किलो मटर, 24,000 किलो गाजर और 32,000 किलो टमाटर उत्पन्न किए जा सकते हैं, वहीं उतनी ही भूमि में मात्र 200 किलो मांस तैयार होता है। ज्ञातव्य हो कि आधुनिक पशुपालन तकनीक में उन्हें सीधे अनाज, तिलहन एवं अन्य पशुओं का मांस ठूँस-ठूँसकर खिलाया जाता है, जिससे कि वे जल्द-से-जल्द अधिक-से-अधिक मांसल बन सकें। इस क्रम में औसतन दो-तिहाई अन्न एवं सोयाबीन पशुओं को खिलाया जाता है।

इस तरह स्पष्ट है कि आधुनिक औद्योगिक पशुपालन से भोजन तैयार करने में कई गुना अधिक भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग होता है, जिनका उपयोग कर कितने लोगों का पोषण हो सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार मांस की खपत में मात्र 10 प्रतिशत कटौती प्रतिदिन भुखमरी से मरने वाले 18,000 बच्चों एवं 6,000 वयस्कों का जीवन बचा सकती है। एक किलो मांस तैयार करने में 7 किलो अन्न या सोयाबीन की खपत होती है। अन्न को मांस में बदलने की प्रक्रिया में 90 प्रतिशत प्रोटीन, 99 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 100 प्रतिशत रेशा नष्ट हो जाता है। 1 किलो आलू उत्पन्न करने में जहाँ मात्र 500 लीटर पानी की खपत होती है, वहीं इतने मांस को तैयार करने में 10 हजार लीटर पानी की खपत होती है।

इस प्रक्रिया में पशुओं के पालन, चरागाहों के निर्माण के लिए जिस तरह से वनों को नष्ट किया जा रहा है, उससे पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ के परिणाम मौसम-परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिंग के रूप में सामने दिख रहे हैं। मांसाहार के साथ इसके तार जुड़े देखे जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की सन् 2019 की क्लाइमेंट चेंज रिपोर्ट के अनुसार, मौसम-परिवर्तन से निपटने के लिए वनस्पति आधारित आहार को प्रोत्साहन देना होगा व मांसाहारी आहार को कम करना होगा। लगभग 100 विशेषज्ञों ने इस रिपोर्ट को तैयार किया, जिनमें आधे विकासशील देशों से थे।

रिपोर्ट की सह-अध्यक्षता कर रहे पारिस्थितिकी विशेषज्ञ हैंस ओटो पोर्टनर ने कहा कि हम यह नहीं कहते कि लोग क्या खाएँ या क्या न खाएँ, लेकिन मौसम एवं मानवीय स्वास्थ्य दोनों दृष्टि से यह उचित होगा यदि लोग मांसाहार को कम करते हैं और बेहतर होगा कि नीतिनिर्धारक लोग ऐसी नीतियों को लागू करने की सोचें। रिपोर्ट ने यह भी कहा कि जंगलों को बचाने की जरूरत है, जो हवा से

कार्बन को सोखते हैं। जानवरों के चारे के लिए जंगल की सफाई को नियंत्रित करने की आवश्यकता है।

रिपोर्ट के अनुसार, अमेजन के जंगलों का निर्बाध रूप में किया गया सफाया इसके बड़े हिस्से को रेगिस्तान में बदल सकता है। ब्राजील के साओ पाओलो विश्वविद्यालय के मौसम विज्ञानी कार्लोस नोब्रे के अनुसार, यह अगले 30 से 50 वर्षों में 50 बिलियन टन कार्बन उत्सर्जित करेगा, जो बहुत चिंताजनक है। पोर्टनर के अनुसार, दुर्भाग्य से कुछ देश जंगलों के सफाए को रोकने की बात को नहीं समझ पा रहे और हम सरकारों को इसे रोकने के लिए आदेश नहीं दे सकते, लेकिन जनमत को इसके पक्ष में तैयार किया जा सकता है।

सन् 2018 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन 37 बिलियन टन के रिकॉर्ड को पार कर गया है, जिसे तीव्रता से नीचे लाने की आवश्यकता है, जिससे कि वैश्विक तापमान को 1.5 डिगरी तक कम किया जा सके, इसके लिए तात्कालिक एवं कठोर कदम उठाने की आवश्यकता है। रिपोर्ट के अनुसार आहार की शैली को बदलने मात्र से सन् 2050 तक लाखों वर्गकिमी भूमि दबाव से मुक्त हो सकती है, जिससे कि वैश्विक कार्बन-डाइऑक्साइड का उत्सर्जन रुक सके। सार रूप में, मौसम में अपने अनुकूल परिवर्तन के लिए आहार की शैली को बदलने की दिशा में बड़े कदम उठाने होंगे।

बीसवीं सदी के महानतम वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने इस संबंध को गहराई से समझा था, जिसके आधार पर उनका कहना था कि पृथ्वी पर जीवन बनाए रखने में कोई भी चीज मनुष्य को उतना लाभ नहीं पहुँचाएगी, जितना कि शाकाहार का विकास। वस्तुतः शाकाहार मनुष्य की प्रकृति से जुड़ी एक अत्यंत स्वाभाविक जीवनशैली है, जो सदा से ही मनुष्य के मूल अस्तित्व से जुड़ी रही है। पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व करोड़ों वर्ष पुराना माना जाता है। मूलतः वह यहाँ कंद, मूल, फल, फूल, पत्ते व पौधों को खाकर निर्वाह करता रहा है। जीवाश्मविज्ञानी डॉ. एलन वाकर ने अपने शोध के आधार पर शाकाहार की प्राचीनता को प्रमाणित किया है। उनका निष्कर्ष था कि मनुष्य का मूल आहार शाकाहार व फलाहार था।

इसके अतिरिक्त शाकाहार एक ऐसी जीवनशैली है जो सीधे सहअस्तित्व, अहिंसा, करुणा एवं मानवता जैसे उदात्त जीवनमूल्यों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति सदा से 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सूत्र में इस दर्शन की वकालत करती आई है। प्रकृति की गोद में, इसको संरक्षित करते हुए, इसके अनुकूल जीवनशैली को अपनाते हुए शाकाहार हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। आधुनिक शोध निष्कर्ष भी स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से इसे श्रेष्ठ विकल्प मान रहे हैं। हम जितना जल्द इन निष्कर्षों को समझ सकें व धारण कर सकें, हमारे लिए वह उतना ही उचित होगा। ❑

एक जिज्ञासु किसी संत के पास ईश्वरदर्शन की इच्छा लेकर गया। संत ने उसे अपने पास बैठाया। एक बड़ा-सा जलभरा पात्र मँगाकर उसमें नमक घोल दिया। इसके बाद जिज्ञासु से कहा—"उस नमक को निकालकर दिखाओ।" यह बिलकुल संभव न था, इसलिए जिज्ञासु ने उत्तर दिया—"अब यह संभव नहीं। मात्र चखकर ही जाना जा सकता है कि नमक का अस्तित्व मिटा नहीं, वरन पानी में घुल गया है।"

तब उन संत ने कहा—"ईश्वर भी इसी प्रकार से इस पूरी सृष्टि में घुल-सा गया है। उसे देखा तो नहीं जा सकता, परंतु उसे अनुभव अवश्य किया जा सकता है।" जिज्ञासु ने दर्शन की हठ छोड़ दी और श्रद्धा के आधार पर अनुभूति की नीति अपनाई।

पुनर्जन्म : एक सुनिश्चित सत्य

पुनर्जन्म को लेकर जनमानस में सदा से ही कौतुक-कुतूहल रहा है। कुछ लोग इसे चमत्कार मानते हैं, तो कुछ लोग इसे मिथ्या मानते हैं। विभिन्न शास्त्रों में पुनर्जन्म संबंधी अनेक आख्यान व प्रमाण हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि पुनर्जन्म न तो कोई चमत्कार है, न ही कोई अंधविश्वास। जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु सुनिश्चित है, पर मृत्यु जीवात्मा के आगे की यात्रा का अंत नहीं है। जीवन की अतृप्त वासनाएँ, कामनाएँ और कर्मफल ही उसके जन्म व पुनर्जन्म के कारण हैं। जब व्यक्ति की वासनाएँ, कामनाएँ, कर्मसंस्कार पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं तभी जीव जीवन-मरण व पुनर्जन्म के चक्रव्यूह से मुक्त हो पाता है। हाँ! यह बात दीगर है कि किसी-किसी को अपने पूर्वजन्म की स्मृतियाँ नए जीवन में भी मानसपटल पर आती रहती हैं, पर सबको अपने पूर्वजन्म की स्मृतियों का स्मरण हो आए, यह आवश्यक भी नहीं है।

पूर्वजन्म की ऐसी अनेक घटनाएँ अक्सर कहीं-न-कहीं घटती हुई दिखाई पड़ती हैं, सुनाई पड़ती हैं। ऐसी ही एक घटना नासिक से 10 किलोमीटर उत्तरपूर्व के एक गाँव में रहने वाले कमलनाथ की है। पाँचवर्षीय मासूम कमलनाथ का कहना था कि उसने मौत के बाद फिर से जन्म लिया है। इतना ही नहीं, वह अपने पिछले जन्म के कातिलों को भी पहचानता है। अपने नए जीवन में भी अपने पूर्वजन्म को याद कर-करके कमलनाथ कभी-कभी बहुत ही उदास और परेशान हो जाया करता था।

हजारों की आबादी वाले नासिक के उस गाँव में ही मनोहर दास रहते थे। उन्हीं के पुत्र कमलनाथ की कहानी यह है। एक ऐसी कहानी जो उसे अक्सर अतीत में ले जाती थी, पूर्वजीवन में ले जाती थी। बच्चा होते हुए भी कमलनाथ का व्यवहार बच्चों जैसा नहीं था। बच्चों के साथ खेलते हुए भी कमलनाथ का चेहरा अचानक गंभीर हो जाया करता था। वह कुछ और भी याद करने का प्रयास करता और फिर परेशान हो जाया करता था। कमलनाथ तीन वर्ष की आयु में भी इतना साफ व स्पष्ट बोलता था मानो वह कितना होशियार और समझदार हो। वह किसी भी बात को बड़ी शीघ्रता से समझ लेता था।

उसकी विभिन्न गतिविधियों को देखकर अब उसके परिवार को भी इस बात का एहसास हो गया था कि कमलनाथ में कोई विशेष बात तो अवश्य है। कमलनाथ को अपनी उम्र के बच्चों के साथ ज्यादा खेलना या रहना पसंद नहीं था। आखिर एक दिन अपनी खामोशी तोड़ते हुए वह बोल पड़ा कि उसका नाम कमलनाथ नहीं, द्वारका सिंह है। उसका अपना घर गाँव में नहीं, नासिक शहर में है। ये सारी बातें कमलनाथ के परिवार के होश उड़ा रही थीं; क्योंकि कमलनाथ तो कभी नासिक गया ही नहीं था। एक दिन अचानक यादों में खोए कमलनाथ ने अपने पिता को पिता और माता को माँ मानने से ही इनकार कर दिया।

परिवार को लगता था कि शायद कमलनाथ को कोई मानसिक समस्या है या फिर उस पर किसी भूत-प्रेत का साया है। सो कमलनाथ की झाड़-फूँक भी कराई गई, टोने-टोटके भी किए गए। ताबीज और भभूत का भी सहारा लिया गया, लेकिन कुछ काम नहीं आया। पाँच वर्ष का कमलनाथ बार-बार अपने माता-पिता व अपनी पत्नी और बच्चों को याद करता रहा। एक दिन अचानक कमलनाथ अपने बड़े भाई विनोद के साथ अपने बगीचे में घूम रहा था। विनोद ने बगीचे से ढेर सारे फल तोड़कर इकट्ठे किए और कुछ फल कमलनाथ को खाने को दिए, पर कमलनाथ ने उन्हें खाने से इनकार कर दिया और कहने लगा कि इन्हें मैं नहीं, मेरे बच्चे प्रियांशु और प्रिया खाएँगे। पता नहीं वे दोनों कैसे होंगे। उस दिन मैं उन दोनों को स्कूल छोड़कर नासिक स्थित अपनी दुकान लौट रहा था कि तभी मोटरसाइकिल पर सवार दो लोगों ने एक सुनसान स्थान पर रोककर मुझे गोली मार दी थी। मेरा सारा शरीर खून से लथपथ हो चुका था। कातिल वहाँ से फरार हो चुके थे। वहाँ लोगों की भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। मुझे किसी ने अस्पताल पहुँचाया, पर रास्ते में ही मैंने दम तोड़ दिया।

उसके बड़े भाई विनोद ने अपने पिता को कमलनाथ के द्वारा बताई गई सारी बातें बताईं। मनोहर दास अंततः सच्चाई का पता लगाने के लिए कमलनाथ और उसके बड़े भाई विनोद को लेकर नासिक पहुँचे। उसके विवरण से मिलती दुकान की तलाश की जाने लगी और आखिरकार वहाँ सब्जी मंडी के पास की गली में स्थित एक दुकान पर वे पहुँच गए। यह वही दुकान थी, जिसका विवरण कमलनाथ के वर्णन से मेल खा रहा था। वे तीनों दुकान के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही कमलनाथ तेजी से उस दुकान की ओर दौड़ पड़ा और कहने लगा कि मेरी दुकान यही है। देखो उस दुकान पर मेरी पत्नी आभा बैठी हुई है।

आभा को देखते हुए कमलनाथ ने पूछा—"मेरे बच्चे प्रियांशु और प्रिया कहाँ हैं? आभा तुम कैसी हो? क्या तुमने मुझे नहीं पहचाना? मैं तुम्हारा पति द्वारका हूँ, जिसकी हत्या मोटरसाइकिल सवार दो लोगों ने कर दी थी। दोनों हेलमेट पहने थे, इसलिए मैं उनके चेहरे को ठीक से पहचान तो नहीं पाया, पर संभवतः वे दोनों लोग वे ही थे, जिनके साथ सिनेमा हॉल में टिकट लेते हुए मेरा झगड़ा व विवाद हुआ था।" पाँच वर्ष के कमलनाथ के मुख से ये सारी बातें सुनकर आभा भी हैरान थी।

आखिरकार मनोहर दास ने सारी बातें आभा को बताईं। आभा ने कहा—"आपके बालक कमलनाथ की सारी बातें सच हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व मेरे पति की किसी ने हत्या कर दी थी। उस दिन वे अपने बच्चों प्रिया और प्रियांशु को छोड़ने विद्यालय गए थे कि रास्ते में लौटते हुए किसी ने उनकी हत्या कर दी थी।" अपने माता-पिता को कमलनाथ देखते ही पहचान गया व उसने उन्हें प्रणाम किया। वहाँ अब तक आस-पास के लोग भी इकट्ठे हो गए थे। अपने आस-पास के सभी लोगों के नाम व घर के बारे में कमलनाथ ने सच-सच बताना शुरू कर दिया। लोग दाँतों तले उँगलियाँ दबा रहे थे और कमलनाथ अपने परिवार व आस-पास के सभी लोगों को अपने पूर्वजन्म के बारे में ऐसी बातें बता रहा था, जो सच थीं।

अंत में उसके कातिल की भी पहचान कर ली गई। मुकदमा दायर हुआ और उन दोनों को सजा हुई। कमलनाथ के पूर्वजन्म के बच्चे प्रिया, प्रियांशु अब हाईस्कूल पास कर चुके थे। कमलनाथ ने उन्हें देखते ही सीने से लगा लिया। कमलनाथ तब से अपने इस जन्म व पूर्वजन्म के परिवारों से जुड़े रहे। यह पुनर्जन्म की एक अद्भुत घटना है। ❑

निरर्थक पूजा-उपासना कृत्य पूरा होने पर भी उद्देश्य की दृष्टि से व्यर्थ ही है। एक कर्मकांडी ब्राह्मण खड़े होकर छहों दिशाओं का पूजन करने में बहुत समय लगाता, पर उसका अभिप्राय न जानता था। एक दिन उसकी इच्छा उपजी और अपनी कृत्य-परंपरा का फल और कारण पूछने तथागत के पास गया।

बुद्ध ने कहा—"कर्मकांड का फल तभी है, जब उसका उद्देश्य समझा जाए और उसे प्रयोजन को अपनाते हुए किया जाए। माता-पिता पूर्व दिशा हैं। आचार्य दक्षिण दिशा हैं। स्त्री, पुत्र, कुटुंबी पश्चिम दिशा हैं। मित्र, संबंधी उत्तर दिशा हैं। अनुशासित शिष्य, सेवक, पाताल दिशा हैं और ब्रह्मवक्ता ऊर्ध्व दिशा हैं। तुम इन सबके साथ उचित कर्त्तव्यों का पालन करो। तभी दिशापूजन की सार्थकता है।"

समस्त अवरोधों से मुक्ति का मार्ग

जीवन में हम प्रायः शिकायत करते हैं कि हम अशांत हैं, हम विपन्न हैं, निर्धन हैं, गरीब हैं। हम दुःखों की शिकायत करते हैं, पीड़ाओं की शिकायत करते हैं, लेकिन हमारे जीवन में ये जो दुःख, पीड़ा, निर्धनता व अप्रसन्नता हैं, इनके कारण हम स्वयं हैं। कहीं हमने अपने व्यक्तित्व में, कहीं हमने अपने अस्तित्व में ऐसे अवरोध पैदा कर रखे हैं, जिनके कारण वो प्रकाश, वो अमृत, वो संपन्नता हम तक पहुँच नहीं पा रहे हैं, जो हमारे लिए जरूरी हैं। ध्यान इन्हीं अवरोधों से मुक्ति का एक उपाय है।

हमें अपने जीवन के इन अवरोधों को हटाना है। हम इन्हें हटा सकते हैं; क्योंकि हमारी पीड़ा के, परेशानियों के बीज हमारे अंदर हैं। किसान खेती के लिए बीज तैयार करते हैं और खेत भी तैयार करते हैं। जोताई करते हैं, खरपतवार निकालते हैं, घास निकालते हैं। मिट्टी को भुरभुरी-मुलायम करते हैं और मिट्टी के तैयार हो जाने पर फिर बीज बोते हैं। फिर प्रकृति से प्रार्थना करते हैं जल की, हवा की, धूप की और फिर फसल लहलहाती है। ध्यान में भी हम ऐसा ही करते हैं। बार-बार मन को, बार-बार भावनाओं को सँवारते हैं। इस तरह ध्यान संपूर्ण रूप से हमारे सूक्ष्मशरीर की साधना है। **ध्यान के द्वारा हम सूक्ष्मशरीर तैयार करते हैं, इसे ऊर्जावान बनाते हैं, प्रकाशपूर्ण बनाते हैं और इसीलिए हम ध्यान के लिए शुभ धारणा करते हैं।**

विधेयात्मक जीवन जीने की धारणा का ध्यान एक ऐसा ही ध्यान है। इसके ध्यान के लिए पहले हम स्थान का चयन करें, फिर हम आसन का चयन करें और इसके उपरांत हम संवाद स्थापित करें शुभ शक्तियों से, संतों से, देवों से, ऋषियों से। हम इन सबके प्रति कृतज्ञ हों, सबकी कृपा को धारण करने के लिए तैयार हों। सबके प्रति विनम्र हों और जो शुभ है—उसके साथ हम अपनत्व बैठा सकें।

हम प्रायः अपना संबंध जोड़ते हैं कुल से, खानदान से, पूर्वजों से। गौरवान्वित होते हैं कि हमारे दादा जी ऐसे थे, दादा के दादा जी ऐसे थे, उस कुल में हमने जन्म लिया है। एक हमारा कुल और भी है आत्मदर्शी लोगों का कुल। एक हमारा गोत्र और भी है, ऋषियों का गोत्र। हम गौतम गोत्र के हैं, वसिष्ठ गोत्र के हैं। इस तरह हम पवित्र पुरुषों से, पूर्वपुरुषों से संबंध रखते हैं और उन संबंधों के साथ हमको अद्भुत अनुभूति होती है, विचित्र अनुभूति होती है, हमारे अंदर एक स्वाभिमान, एक सामर्थ्य जागता है कि हम उस कुल से हैं। हमारे अंदर कुछ श्रेष्ठतम ऐसा होना चाहिए, हमारे जीवन में श्रेष्ठता होनी चाहिए, हम निकृष्ट नहीं हो सकते।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने एक बात बताई थी कि जब हम सोने जाएँ तो कुछ महापुरुषों का ध्यान करें। सोते समय हम उच्चतम लोगों का चिंतन करें कि ये हमारे हैं और हम इनके हैं। निषेधात्मकता, नकारात्मकता हमको निकृष्टता से जोड़ते हैं और स्वीकार्यता हमको श्रेष्ठता से जोड़ती है। ध्यान, श्रेष्ठता से स्वयं को जोड़ने की विधि-व्यवस्था है। जैसे-जैसे ध्यान का अभिसिंचन हमारे ऊपर होगा, वैसे-वैसे हमारे व्यक्तित्व में नवसिंचन का संचार होने लगेगा, नए प्राण आने लगेंगे।

हमारा जीवन कुछ मुरझाया हुआ, कुछ कुम्हलाया हुआ है। ऐसा इसलिए; क्योंकि हमारे अंदर जीवनदायी तत्त्वों की कमी हो गई है। ध्यान जीवनदायी तत्त्वों की प्राप्ति है। वो जीवनदायी तत्त्व हमें ध्यान के माध्यम से मिलते हैं। हमारे जीवन में विष बहुत है और अमृतत्व की कमी है, हम अगर देखें कि दिन में काम करते समय, जीवन जीते समय, जीवन के सामान्य कार्य करते समय हम क्या करते हैं तो कहीं-न-कहीं उद्वेग से, विक्षोभ से, द्वंद्व से, क्रोध से हम विष का संचय करते हैं। इस विष का निराकरण भी तो होना चाहिए।

ध्यान हमारे जीवन में अमृत सिंचन है, इसमें जीवन के विष का शमन है। इस ध्यान में हम ऐसी प्रगाढ़ कल्पना करते हैं कि सब ओर से हमारे ऊपर अमृत बरस रहा है। एक मंत्र है—महामृत्युंजय मंत्र। महा का मतलब होता है—व्यापक, बड़ा। अतिव्यापकता जिसमें हो, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की व्यापकता। उसमें हम ध्यान करते हैं कि भगवान शिव अपने हाथों से अमृतघट हमारे ऊपर उँड़ेल

रहे हैं, अमृत उँड़ेल रहे हैं। हमारे ऊपर अमृत बरस रहा है, हम अमृत से स्नान कर रहे हैं।

अब तो शोधपत्रों व वैज्ञानिकों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि जो व्यक्ति जितना तनावमुक्त रहता है, हँसता-खिलखिलाता रहता है व सकारात्मक रहता है ऐसे लोगों के रोगमुक्त होने, स्वस्थ होने की संभावना ज्यादा होती है। जीवन में जितना महत्त्व हमारे कार्यों का है, उतना ही महत्त्व हमारे चिंतन का, हमारी सोच का व हमारे सुविचारों का भी है।

आजकल एक सिंचाई हो रही है, जिसमें पानी कम लगे और खेत अच्छे से सिंचे, गहराई से सिंचे। गहराई से खेतों में नमी आए, ऐसा कृषि वैज्ञानिकों ने सिंचाई का तरीका खोजा है; क्योंकि पानी की कमी हो रही है, तो बूँद-बूँद सिंचाई की तकनीक अपनाई जा रही है। इसमें खेतों में ऐसा पाइप डाल देते हैं कि बूँद-बूँद पानी उसमें से निकलता है। पहले जब सिंचाई होती थी तो उसमें खेतों में छोटी-छोटी नालियाँ बनाते थे और उनमें पानी बहाते थे, जिनसे सिंचाई होती थी, लेकिन सिंचाई की नवीन तकनीक में केवल पाइप पड़े रहते हैं और उनमें से बूँद-बूँद फव्वारे निकलते हैं, जिनसे सिंचाई होती है।

ध्यान भी कुछ इसी तरह से सिंचाई है। ध्यान जीवन की संपूर्णता है। संपूर्णता के साथ जीने की कला है। ऐसा करने से जीवन परिवर्तित होता है, बदलता है।

रहीम दास जी का एक दोहा है—

एकहिं साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिए, फूलहिं फरहिं अघाय॥

एक साध लो, तो सब सध जाता है, जैसे जड़ का सिंचन करो तो तने, पत्ते, डालियाँ सब हरे-भरे रहेंगे, खूब फल-फूल लगेंगे। ध्यान हमारे व्यक्तित्व की जड़ों की सिंचाई है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि हमारे व्यक्तित्व की जड़ ऊपर की ओर है—**ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् अश्वत्थम् प्राहुरव्ययम्**। *(अध्याय 15)* हमारे जीवन की जड़ शरीर में नहीं है, मन में है, भावना में है। इसी जड़ के सिंचन का नाम ध्यान है। स्वीकार्यता, श्रद्धा, प्रार्थना इसी जड़ को सींचने की प्रक्रियाएँ हैं। जड़ सींची जाती है तो जीवन फलता-फूलता है। ध्यान के माध्यम से हम अपनी जड़ों को सींचना शुरू करते हैं। ध्यान को अपनाकर हम जड़ों को सींचने की शुरुआत करते हैं और इसमें हमारी जड़ों का सिंचन होता है अमृत रस से। ❑

उपासना—ध्यान के समय विचार जैसे होंगे, वैसा ही चिंतन व वैसी ही परिणति होगी। स्वाध्याय एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति का माहात्म्य इसीलिए अधिक बताया गया है। एक साधक जब भी पूजा में बैठता, तभी बुरे विचार उसके मन में उठते। वह गुरु से इसका हल पूछने गया। गुरु ने उसे एक कुत्ते की सेवा करने का आदेश दिया और दस दिन तक वह उनके आश्रम में ही ठहरा। शिष्य कारण तो समझ न सका, पर गुरु की आज्ञा मानकर वैसा ही करने लगा।

दस दिन कुत्ते को साथ रखने से वह पूरी तरह हिल-मिल गया। गुरु ने आज्ञा दी कि इसे भगाकर आओ। साधक भगाने जाता, पर वह फिर पीछे-पीछे लौट आता। तब गुरु ने समझाया कि जिन बुरे विचारों में तुम दिनभर डूबे रहते हो भला पूजा के समय वे साथ क्यों छोड़ने लगे ? शिष्य की समझ में वस्तुस्थिति आ गई और उसने दिनभर अच्छे विचार करते रहने की साधना शुरू कर दी। ध्यान का अर्थ मात्र एकाग्रता नहीं, श्रेष्ठ विचारों की तन्मयता भी है।
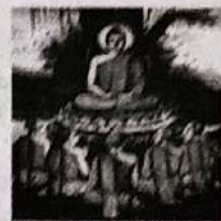
जागो! समय हाथ से निकला जा रहा है

एक बार महात्मा गौतम बुद्ध कहीं प्रवचन दे रहे थे। लोगों की काफी भीड़ थी। लोग बड़े मनोयोग से बुद्ध का प्रवचन सुन रहे थे। उस भीड़ में बाल, वृद्ध, युवा, किसान, स्त्री, व्यापारी आदि सभी बैठे थे। सभी अपने अनुसार बुद्ध के प्रवचन को सुन-समझ रहे थे। अपने प्रवचन के अंत में बुद्ध बोले—''जागो! समय हाथ से निकला जा रहा है।'' यह कहने के साथ ही भगवान बुद्ध का प्रवचन समाप्त हुआ। सभा विसर्जित हुई। लोग वहाँ से उठकर अपने-अपने गंतव्य की ओर जाने लगे।

बुद्ध भी सभास्थल से निकलकर बाहर आए और अपने प्रिय शिष्य आनंद से बोले—''वत्स! चलो थोड़ी दूर घूमकर आते हैं।'' वहाँ से बुद्ध आनंद के साथ चल दिए। थोड़ी दूर जाकर वे अचानक रुक गए और शांत भाव से वहाँ किनारे चहलकदमी करने लगे। आनंद समझ गए कि गुरुदेव यदि यहाँ रुककर कुछ चिंतन करने लगे हैं तो इसके पीछे अवश्य ही कोई विशेष कारण या प्रयोजन होगा। तभी आनंद ने पीछे मुड़कर देखा कि प्रवचन सुनने आए लोगों में से कुछ लोग सभास्थल से निकलकर सीधे बुद्धदेव की ओर ही आ रहे हैं। शायद बुद्धदेव इसीलिए वहाँ रुक गए थे।

अचानक उस भीड़ से निकलकर एक स्त्री गौतम बुद्ध से मिलने आई। उसने कहा—''तथागत! मैं नर्तकी हूँ। आज नगरसेठ के घर मेरे नृत्य का कार्यक्रम पहले से तय था, लेकिन मैं उसके बारे में भूल चुकी थी। परंतु जब अपने प्रवचन के अंत में आपने कहा—'जागो! समय निकला जा रहा है' तो मुझे तुरंत इस बात की याद आई। इसके लिए मैं आपकी आभारी हूँ।'' इतना कहकर वह स्त्री वहाँ से चली गई। तभी सभास्थल से निकलकर एक डकैत बुद्ध के पास आया और बोला—''तथागत मैं आपसे कोई बात छिपाऊँगा नहीं। मैं भूल गया था कि आज मुझे एक जगह डाका डालने जाना था, पर जब आपने अपने प्रवचन में कहा—'जागो! समय निकला जा रहा है,' तभी मुझे अपनी योजना याद आ गई। इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद तथागत!''

डकैत के जाने के बाद धीरे-धीरे कदमों से चलता हुआ एक वृद्ध व्यक्ति बुद्ध के पास आया। वृद्ध ने कहा—''तथागत! मैं जीवनभर दुनियादारी की चीजों के पीछे भागता रहा और अब मौत का सामना करने का दिन नजदीक आता जा रहा है। अब मुझे लगता है कि सारी जिंदगी यों ही बेकार चली गई, पर आज जब अपने उपदेश में आपने कहा—'जागो! समय निकला जा रहा है' तो मेरी आँखें खुल गईं। आज से मैं अपनी दुनियादारी के मोह को छोड़कर निर्वाण के लिए प्रयत्न करना चाहता हूँ।'' उस वृद्ध के शब्दों में सचमुच सचाई थी। अब वह सचमुच अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए कुछ करना चाहता था। अपने निर्वाण के लिए, मोक्ष के लिए कुछ सार्थक प्रयास करना चाहता था।

बुद्ध के उपदेश से सचमुच उसकी आँखें खुल गईं थीं। उसने ही बुद्ध के उन वचनों का कि जागो! समय निकला जा रहा है—सही अर्थ समझा और तदनुरूप जीवन जीने का संकल्प लिया। बुद्ध के शब्दों ने उसके सोए हुए आत्मविश्वास को जगा दिया। बुद्धदेव ने उसे आशीष दिया और तब उस वृद्ध ने एक नई उमंग, नई ऊर्जा के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। जब वहाँ से सभी लोग चले गए तो बुद्ध ने आनंद से कहा—''देखो वत्स आनंद! प्रवचन मैंने एक ही दिया, लेकिन उसका अर्थ हर किसी ने अलग-अलग निकाला। हर किसी ने उसका अलग मतलब समझा। जिसकी जैसी समझ होती है, जिसकी जैसी झोली होती है, वह उतना ही दान ग्रहण कर पाता है। निर्वाण प्राप्ति के लिए भी मन की झोली को उसके लायक होना होता है। इसके लिए मन का शुद्ध होना जरूरी है।''

भगवान बुद्ध का यह आख्यान प्रत्येक साधक के लिए जीवन की दिशा निर्दिष्ट करने जैसा है। यदि व्यक्ति के जीवन की दिशा सार्थक उद्देश्य को पूरा करने के लिए तय हो जाती है व वह समय रहते उसके लिए जागरूक हो जाता है तो फिर उसे सफलता मिलनी सुनिश्चित हो जाती है। ❑

समय को ऐसे साधें

समय के बारे में प्रख्यात है कि यह एक ऐसा उड़ता हुआ सच है, जिसका चेहरा कोई नहीं देख पाता; क्योंकि यह सदा आगे बढ़ता रहता है, पीछे मुड़कर नहीं देखता। इसके सिर के पीछे बाल होते हैं, कोई चाहे तो बस इनको पकड़कर इसके साथ कदमताल करते हुए काल को अपने पक्ष में कर सकता है अन्यथा काल किसी का इंतजार नहीं करता। जो इसके साथ कदमताल नहीं कर पाते, वे जीवन की यात्रा में पिछड़ जाते हैं व उन संभावनाओं से वंचित रह जाते हैं, जिनके साथ उन्हें धरती पर भेजा गया था, जिनका पूर्ण विकास यहीं पर संभव था।

यह एक सचाई है कि सबको चौबीस घंटे मिले हैं, न इसके अधिक और न कम। इसके बावजूद कई इस समय में आश्चर्यजनक कार्य कर डालते हैं, तो कई समय के अभाव का रोना ही रोते रहते हैं। यहाँ सारा खेल समय के नियोजन व सदुपयोग का है। यही वह कारक है, जो एक सफल व्यक्ति को असफल व्यक्ति से अलग करता है। लापरवाह व्यक्ति के हाथ में से चौबीस घंटे कुछ ऐसे ही फिसल जाते हैं, जैसे मुट्ठी से रेत, लेकिन सजग व्यक्ति एक-एक पल का सदुपयोग करते हुए, जैसे बालू के ढेर से तेल निकालने की उक्ति को चरितार्थ करता है। जबकि समय की कीमत से अनजान एक लापरवाह व्यक्ति समय के अभाव की शिकायत करता रहता है और एक असफल एवं नाकारा जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है।

समय का श्रेष्ठतम उपयोग कैसे करें—इसके लिए समय प्रबंधन के सूत्रों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसमें कार्यों की प्राथमिकताओं की समझ महत्त्वपूर्ण होती है और इसके लिए अपने लक्ष्य की स्पष्टता का होना अनिवार्य होता है, जिसके आधार पर कुशल समय प्रबंधन को अंजाम दिया जा सके।

प्रायः कार्यों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहले—महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक कार्य, जिन्हें बिना समय गँवाए पूरा करना होता है। दूसरे—महत्त्वपूर्ण, किंतु गैर-तात्कालिक कार्य, जिन्हें उपयुक्त समय पर पूरा करने के लिए छोड़ा जा सकता है। तीसरे— तात्कालिक, किंतु गैर-महत्त्वपूर्ण कार्य, जिन्हें अपने सहयोगियों के बीच बाँटा जा सकता है। चौथे—गैर-तात्कालिक और गैर-महत्त्वपूर्ण कार्य, जिन्हें फुरसत के समय के लिए टाला जा सकता है।

प्रायः जो समय-अभाव का रोना रोते हैं, या जिनके आवश्यक कार्य समय पर नहीं हो पाते और जो हमेशा परेशानी की अवस्था में हैरान-परेशान रहते हैं, अंतिम समय पर कार्यों को पूरा करने की हड़बड़-तड़बड़ में रहते हैं। वे इस प्राथमिकता का कहीं-न-कहीं उल्लंघन कर रहे होते हैं। जब हम गपशप, चैटिंग या चौथे स्तर के अन्य अनावश्यक कार्यों को अपनी प्राथमिकता बनाकर चल रहे होते हैं, तो प्रथम व द्वितीय श्रेणी के कार्यों के लिए समय नहीं बच पाता और वे टलते रहते हैं तथा वे अंतिम समय में तनावपूर्ण दबाव बनाते हैं तथा जल्दबाजी या आधे-अधूरे ढंग से संपन्न होते हैं।

अतः समय को साधने के लिए उपरोक्त प्राथमिकता की समझ के साथ कुछ अन्य तथ्यों पर ध्यान देना भी आवश्यक है, जो निम्न प्रकार से हैं—

समय को साधने वाले तत्त्व—

1. प्लानिंग—प्लानिंग समय लेती है, लेकिन दीर्घकाल में यह समय की बचत करती है। योजना बनाकर काम करना समय को बाँधने में महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिए नियमित रूप में लिया गया समय एक तो मूल्यवान समय की बचत करता है और कम समय में अधिक कार्य को संपन्न करने में सहायक होता है।

2. चार्ट बनाकर ट्रैकिंग करना—चार्ट बनाकर कार्य को ट्रेक करने से हमें लक्ष्य की प्रगति का पता चलता रहता है। इस चार्ट में रोजमर्रा के कार्यों का विवरण टिक करने पर हमें दैनिक एवं साप्ताहिक आधार पर कार्य की प्रगति का आकलन होता रहता है और जो बिंदु अपेक्षित हो रहे होते हैं, इन्हें फिर कुशलतापूर्वक अंजाम भी इसी विधि से दिया जा सकता है।

3. एकाग्रता—अपने लक्ष्य पर केंद्रित रहना एक महत्त्वपूर्ण कारक है। कार्य से विचलित करने वाले कई कारण राह में आएँगे, लेकिन यदि दृढ़ता एवं स्पष्टता के साथ अपने लक्ष्य पर अडिग रहा जाए, तो कार्य में आशातीत सफलता मिलने पर आशा-उत्साह बढ़ता जाता है और समय प्रबंधन आसान हो जाता है।

4. पीक आवर्स—जिन पलों में तन-मन एक लय में होते हैं, चित सहज रूप में शांत एवं एकाग्र होता है, ऐसे पलों को गैर महत्त्वपूर्ण कार्यों में बरबाद न करें। इन पलों में कुछ समय में बहुत सारे कार्य सहज रूप में निपट जाते हैं। ऐसे बहुमूल्य पलों को महत्त्वपूर्ण एवं कठिन कार्यों को संपन्न करने में व्यतीत करना समय प्रबंधन की दृष्टि से समझदारी वाला कदम रहता है।

5. छोटे से बड़े कार्य को दें अंजाम—यदि कई सारे कार्यों को निपटाना हो व कहाँ से शुरू करने का असमंजस हो, तो बिना समय गँवाए उन कार्यों को हाथ में लें, जो सरल हों, छोटे हों या रुचिकर हों। इनका सफलतापूर्वक अंजाम आशा एवं उत्साह को बढ़ाता है, जो फिर बड़े एवं कठिन कार्यों को करने के लिए उपयुक्त मनोभूमि देता है।

6. खाली समय का करें सदुपयोग—कहीं इंतजार करते हुए, ट्रेन या मेट्रो में सफर करते समय खाली समय का सदुपयोग प्राथमिकताओं के आधार पर आवश्यक कार्यों को पूरा करने में किया जा सकता है। इन पलों में कई तरह के दूसरी, तीसरी व चतुर्थ श्रेणी के कार्यों को निपटाया जा सकता है।

समय को नष्ट करने वाले कारक—समय के सदुपयोग के साथ ऐसे तत्त्वों पर ध्यान देना भी जरूरी है, जो समय को घुन की तरह बरबाद करते हैं। इनसे सजग-सावधान रहने की आवश्यकता है।

1. सोशल मीडिया—आज का एक ऐसा सच है, जो अधिकांश स्मार्टफोन के उपयोगकर्त्ताओं के समय की बरबादी का एक बड़ा कारण है। इसका जितना आवश्यक हो, उतना ही उपयोग करें। दूसरी ओर से आ रहे महत्त्वपूर्ण संदेशों को दिन के किसी निश्चित समय में निपटाया जा सकता है। दिनभर इससे चिपके रहना किसी भी तरह उचित नहीं माना जा सकता।

2. गपबाजी और प्रपंच—समय को बरबाद करने वाला एक और बड़ा कारक है। यार-दोस्तों के बीच जब महफिल सजती है, तो पता ही नहीं चलता कि कैसे घंटों गपबाजी और परचर्चा में बीत गए। ऐसी किसी भी निर्धारित बैठक में एक निश्चित समय से अधिक न बैठें और यदि वातावरण नकारात्मक हो तो, इससे यथासंभव दूर ही रहें।

3. बार-बार वही गलती और गलती से सबक न लेना—समय को नष्ट करने वाला एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है। बार-बार वही गलती करने से हम एक नकारात्मक मनोभूमि में जकड़ जाते हैं। इस अंतहीन कुचक्र से बाहर निकलना किसी भी प्रगति के लिए आवश्यक होता है। इसके बाहर निकलते ही नई ऊर्जा, उत्साह एवं विश्वास की प्राप्ति समय के बेहतर नियोजन को सुनिश्चित करती है।

4. एक साथ कई कार्य करना—ऐसे में दबाव कुछ इस कदर बढ़ जाता है कि मुख्य कार्य सही ढंग से नहीं हो पाते। ऐसे में आवश्यक है कि कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर एक-एक करके निपटाया जाए। जहाँ तक संभव हो बहुत सारे कार्यों को हाथ में एक साथ न लिया जाए।

5. परफेक्शन की चाहत—स्वयं में एक अच्छी बात है, लेकिन समय प्रबंधन में यह एक बाधा भी हो सकती है, क्योंकि ऐसे में जब परिणाम आशानुकूल नहीं आते और स्वयं से आशा-अपेक्षा कुछ अधिक रहती है तो व्यक्ति हताश हो सकता है, और प्रयास में शिथिलता आ सकती है।

6. बिगड़ी जीवनशैली—भी एक बड़ा कारक है, जो प्रभावी समय प्रबंधन में बाधक बनता है। जब सोने-जागने का कोई क्रम निश्चित न हो, आहार-विहार व जीवनचर्या अस्त-व्यस्त हो, तो ऐसे में बिगड़ी जीवनशैली मानसिक संतुलन को प्रभावित करती है, जिसका समय प्रबंधन से सीधा संबंध रहता है। ❑

बहूनपि गुणानेको दोषो ग्रसति।

अर्थात अनेक गुणों को ग्रसित करने के लिए एक दोष ही पर्याप्त है।

चेतना की शिखर यात्रा—208

शक्तिरूपेण संस्थिता

विगत अंक में आपने महानदी के किनारे बसे केंद्रपाड़ा गाँव की अवंती के विषय में पढ़ा। उनके पति वल्लभ शर्मा अध्यापक थे और गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने अपनी पत्नी की व्यथा को दूर करने के लिए उसे शांतिकुंज में प्रारंभ होने वाले त्रैमासिक महिला प्रशिक्षण शिविर के लिए भेजा। उनका भाव था कि यदि कुछ सीख न भी पाईं तो भी आश्रम के दिव्य वातावरण में रहने से व्यक्तित्व में सार्थक परिवर्तन अवश्य आएँगे। शिविर पूरा होते-होते उनका जीवन पूरी तरह से बदल गया था। उन्होंने अपने गाँव पहुँचकर महिला प्रौढ़ पाठशाला की शुरुआत की। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण..........

महिला जागरण अभियान की पृष्ठभूमि अप्रैल 1974 में बन गई थी। संभवतः वैशाखी का दिन था। सुबह कार्यकर्त्ता गोष्ठी में गुरुदेव ने इस अभियान की घोषणा की। आश्रम की व्यवस्था और गायत्री परिवार की गतिविधियों की चर्चा के दौरान उन्होंने अनायास ही कहा—''अगले दिनों दुनियाभर में महिलाएँ सभी क्षेत्रों में ज्यादा सक्रिय होती दिखाई देंगी। वे पुरुषों से कंधा मिलाकर ही नहीं, उन्हें मात देते हुए आगे बढ़ेंगी। दिखाई दे रहा है कि नारी शक्ति को उभरने से कोई रोक नहीं सकता। इस उभार के साथ खतरा यह है कि दिशा नहीं मिली तो कहीं भटकाव न आ जाए और अपने देश में तो हालत और भी विचित्र है। यहाँ स्त्रियों में शिक्षा का नितांत अभाव है। पारिवारिक मूल्यों और समाज के पारंपरिक ढाँचे के कारण थोड़े संस्कार बचे हैं। उनका संरक्षण नहीं किया गया तो हालत और बिगड़ जाएगी। शिक्षा और संस्कार के अभाव में नारीशक्ति का उभार नई समस्याएँ खड़ी करेगा। इसलिए महिलाओं के लिए अपने मिशन का एक नया अध्याय शुरू करना आवश्यक हो गया है।''

इस उद्‌बोधन के साथ उन्होंने महिला जागरण अभियान का पूरा खाका खींच दिया था। गोष्ठी में बैठे किसी कार्यकर्त्ता ने सुनकर यह भी कहा कि आज के दिन ही गुरु गोविंद सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना की थी और पुरुषों में शौर्य, संघ तथा संघर्ष का आह्वान किया था। महिला जागरण का आह्वान भी उसी तरह का ऐतिहासिक क्षण है। गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता को टोका— ''हमें इस संकल्प को किसी ऐतिहासिक घटना से जोड़कर नहीं देखना चाहिए। प्रत्येक घटना का अपना महत्त्व है।''

गुरुदेव ने कार्यकर्त्ता गोष्ठी में इस नए अभियान के बारे में बताया। ठीक उसी दिन सुबह दस बजे के आस-पास की बात है। दक्षिण भारत में सबरीमलै तीर्थ के पास स्थित करुणाकर आश्रम में एक साध्वी माँ मीरा अपने संस्थान को विसर्जित करने की योजना बना रही थीं। माँ मीरा दरअसल पांडिचेरी स्थित श्री अरविंद आश्रम की अधिष्ठात्री श्रीमाँ से प्रभावित थीं। इस कदर प्रभावित कि उनकी स्थिति को श्रीमाँ के रंग में रँग जाना भी कह सकते हैं। साध्वी का मूल नाम कुछ और था, श्रीमाँ के मूल नाम की छाया ग्रहण करते हुए उन्होंने भी अपना नाम मीरा रख लिया था। श्री अरविंद आश्रम की माँ ने गुह्य विद्याओं के अब तक रहस्य ही रहे अध्यायों के साथ, अध्यात्म, धर्म, समाज, संस्कृति, शिक्षा और विश्व-व्यवस्था की अनेक धाराओं का उन्मेष किया था। उनका अनुगमन करती हुई माँ मीरा तंत्र और भक्ति पर ही जोर देती थीं।

यात्रा करो-प्रवासी बनो

माँ मीरा के आश्रम में सात महिलाएँ थीं। वे सभी अपनी अधिष्ठात्री माँ के साथ योग और तंत्र की साधना कर रही थीं। आश्रम का नाम था आद्या शक्तिपीठ। चैत्र नवरात्र की अंतिम तिथि थी। पूर्णाहुति का दिन था। मीरा अपनी साधक शिष्याओं के साथ यज्ञ अग्निहोत्र संपन्न करने ही वाली थीं कि पूर्णाहुति के समय विचित्र अनुभव हुआ।

'वसोपवित्रमसि शतधारं.....' मंत्र पढ़ते हुए यज्ञकुंड में घी की धार बाँधना शुरू किया ही था कि यज्ञाग्नि तीव्र होकर उठने लगी। माँ मीरा को यज्ञ अग्निहोत्र अनुष्ठानों का अच्छा अनुभव था। वे जानती थीं कि वसोर्धारा के समय अग्नि प्रचंड हो उठती है। लेकिन इस बार अग्नि सामान्य ढंग से प्रचंड नहीं हुई थी। माँ का कहना था कि शास्त्रों में जिस प्रकार बताया गया है कि अग्नि अपनी सातों जिह्वाओं के साथ ज्वलंत हो उठती है तो साधक को अपने अनुष्ठान की सफलता का आभास होने लगता है। लगता है कि उपास्य देव प्रकट हो रहे हैं।

माँ मीरा के नवरात्र अनुष्ठान और पूर्णाहुति यज्ञ के पीछे कोई लौकिक कामना नहीं थी। वे चाहती थीं कि 'आद्या शक्तिपीठ' का विस्तार हो और यह ज्यादा-से-ज्यादा महिलाओं के लिए आश्रय स्थान बने। वे अपनी सांसारिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर सकें। वसोर्धारा के समय यज्ञाग्नि जब अपने पूरे और अतिशय वेग के साथ प्रकट होने लगी तो माँ मीरा ने समझा कि अब भगवती प्रकट होने ही वाली हैं। इस आशा-अपेक्षा के जागने और तीव्र होते जाने के किसी क्षण में ही माँ ने अनुभव किया कि यज्ञाग्नि में से धीरे-धीरे एक दिव्य आकृति प्रकट हो रही है। निमिषमात्र में ही उसने सिंहवाहिनी दुर्गा का रूप ले लिया। माँ मीरा ने उस आकृति को प्रणाम किया। आकृति ने—भगवती दुर्गा ने आशीर्वाद मुद्रा में हाथ उठाया और कहा—"आश्रम से बाहर भी निकलो! यात्रा करो, प्रवासी बनो और नारियों में सोए स्फुल्लिंगों का आह्वान करो।"

माँ मीरा ने भगवती के इस आदेश को शिरोधार्य करने की मुद्रा में सिर झुकाया। उन्हें भगवती की वाणी सुनाई दे रही थी—"भगवती गंगा के तट पर देवियों के आह्वान का महत्कार्य आरंभ होने जा रहा है। उस महत्कार्य में स्वयं को लीन कर दो। तुम्हारी तरह और भी साधक प्रत्यक्ष और परोक्ष भागीदार बनने वाली हैं। उस महत्कार्य में तुम्हें और भी उच्चस्तर की विभूतियों का संसर्ग मिलेगा।"

इस उद्बोधन के बाद भगवती की आकृति वापस अग्निशिखा में लीन हो गई। वसोर्धारा का चरण पूरा हो गया था और अब पूर्णाहुति यज्ञ की शेष क्रियाएँ पूरी हो रही थीं। माँ मीरा ने उसी समय आश्रम को विसर्जित करने का मन बना लिया। यहाँ निवास करने वाली साधक चाहें तो वे चलाएँ और विस्तार दें। स्वयं तो यहीं तक सीमित नहीं रहना है। आठ-दस दिन माँ मीरा ने अपनी साथी संन्यासिनियों से विचार-विमर्श किया और तय रहा कि बाकी महिलाएँ भी अपने घरों में लौट जाएँ और भगवती दुर्गा ने जिस महत्कार्य में जुटने के लिए कहा है, उसी में लग जाएँ। माँ ने डेढ़-दो महीने के भीतर ही आश्रम को विराट में विलीन करने की योजना बनाई और उसे पूरा भी कर दिया। इसके बाद स्वयं शांतिकुंज की ओर चल दीं।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में अगरतला (त्रिपुरा) के पास एक कस्बा है बीसलगढ़। आस-पास मीलों तक घना जंगल फैला हुआ है। बीसलगढ़ से ढाई-तीन किलोमीटर एक आश्रम था विशालाक्षी मंदिर। वहाँ कुछ साधक भी निवास करते थे। ज्यादा समय वहीं बिताते और रात में विश्राम के लिए अथवा मंदिर के लिए कभीकभार बीसलगढ़ भी आ जाया करते थे। मंदिर डेढ़ सौ साल पुराना बताया जाता है। उपेक्षित होने के कारण ढहता जा रहा था। अब तो शायद वहाँ भग्नावशेष ही हैं, लेकिन 1975 में वहाँ साधन भजन चला करता था। उस वर्ष और उसके बाद तक ज्येष्ठ मास की बात है—शुक्ल पक्ष के नवरात्रों में आराधन बरुआ, सोमनाथ, गार्गी विश्नोई, रमानी और जगदंबी आदि साधकों ने भगवती-अर्चन का कार्यक्रम रखा।

चौबीस घंटे के इस अखंड आयोजन में कुछ साधक तीन-तीन घंटे तक बारी-बारी से जप करते थे और कुछ मंदिर गर्भगृह के बाहर स्वाध्याय, संदोह, चर्चा विमर्श में व्यस्त रहते। संदोह विमर्श कभी एक ही मंच से संचालित होता तो कभी तीन-तीन, चार के अलग-अलग समूहों में। यह अर्चना व्यवस्थित और पहले से तय चरणों के अनुसार होती। जप, साधन और संदोह की प्रक्रिया चलते हुए दस-ग्यारह घंटे बीत गए। सुबह सात बजे शुरू हुई अर्चना अगले दिन इसी समय पूरी होनी थी। शाम पाँच बजे का समय रहा होगा। वह समय संध्या-पूजा से पहले मंचीय चर्चा का था। साधक विमर्श के लिए एकत्रित हो रहे थे। पंद्रह-सोलह साधक आए होंगे कि उनका ध्यान अपने बीच मौजूद एक गेरूआ वस्त्रधारी साधक पर गया। साधक सबके लिए नया था। किसी ने उसे आस-पास तो क्या मीलों दूर तक भी नहीं देखा था। जगदंबी ने पहल की और प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। फिर पूछा कि आप कहाँ से? उस साधक ने अपना परिचय दिया कि मैं ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर रहने वाला साधु

वैरागी हूँ। इधर से गुजर रहा था और कुछ प्रेरणा उठी तो यहाँ चला आया। उस साधक ने तत्परता से उत्तर दिया। जैसे वह पूछे जाने का इंतजार कर रहा था। जगदंबी ने अभिवादन किया और कहा—''आप को नमन है। हम लोग आपके अनुभव भी सुनना चाहेंगे।''

साधु वैरागी नाम का वह संन्यासी जगदंबी का निमंत्रण सुनकर मुस्कराया और साथ-साथ चल दिया। फिर मंच पर गया और बिना कोई भूमिका बनाए कहने लगा—''अब यह पाखंड ज्यादा नहीं चलने का। हम लोग माँ के दिव्य रूप की तो आराधना करते हैं और उसके जागतिक रूप को पैरों तले रौंदते हैं। यह पाखंड है, ज्यादा नहीं चलेगा। समय बदल रहा है। जल्दी ही माँ का दिव्य रूप जगत में भी व्यक्त होगा और हम लोग नहीं सुधरे तो माँ दंडित करेंगी।''

लगभग दस मिनट तक साधु के मुँह से दिव्य और जागतिक रूपों के बारे में सूत्रवाक्य निकलते रहे। फिर वह बोला—''जिसे हम नद कहते हैं न, ब्रह्मपुत्र महानद। देखना वह भी महानदी के रूप में बहेगी। हम इसी नाम से पुकारने लगेंगे।'' साधु वैरागी की वाणी में जैसे सम्मोहन था। वहाँ उपस्थित साधकों ने मंत्रमुग्ध होकर सुना। सुनते-सुनते साधक इतने तल्लीन हो गए कि साधु वैरागी ने अपनी बात कब पूरी की, कुछ पता ही नहीं चला। यह भी ध्यान नहीं रहा कि साधु अपनी बात कहकर कब मंच से उतरा और कब चला गया। साधकों को सुध आई तो वे वैरागी को खोजने लगे। कुछ मंदिर से बाहर भी ढूँढ़ने गए, पर कहीं पता नहीं चला। उन लोगों में से किसी ने कहा कि कोई अलौकिक व्यक्ति होगा। कृपा करने आया होगा। औरों ने भी इसकी पुष्टि की और अपनी निर्धारित चर्चा में लग गए। ❑

इटली के एक छोटे से गाँव में जन्मे ऐविले आरंभिक जीवन में ही पादरी बना दिए गए, पर उन्होंने आँख खोलकर देखा कि पादरियों द्वारा कितना भ्रम-जंजाल फैलाया जा रहा है और लूट-खसोट के लिए विचित्र आडंबर किया गया है। उन्होंने अपने समुदाय को इसके लिए लताड़ा और जनता को सावधान भी किया। जिनके स्वार्थों को चोट पहुँची वे उनके विरोधी बन गए, पर इसकी उन्होंने तनिक भी परवाह न की।

ऐविले ने अनुभव किया कि मात्र धर्मोपदेश या कर्मकांड पूरे कर लेने में ही धर्मधारणा का उद्देश्य पूरा नहीं होता। धर्मजीवियों को देश की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में भी जुटना चाहिए। उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा। एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की, जिसके माध्यम से प्रत्येक धर्मप्रेमी को इस तत्त्वज्ञान की वास्तविकता का पता चल सके।

समाज-सुधार से लेकर राजनीतिक गुत्थियों के समाधान के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया। विग्रह और संधि के जितने अवसर पड़ोसी देशों के साथ आए उन्हें सुलझाने में उन्होंने भरपूर सहायता की। उन्हें इटली में आदर्श पादरी माना जाता है और उनके मृत्यूपरांत भी उन्हें एक सत्यनिष्ठ दूरदर्शी के रूप में भरपूर सम्मान दिया जाता है।

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

सुदृढ़ एवं समृद्ध गणतंत्र ऐसे आएगा

गणतंत्र दिवस की खुशहाली सब तरफ है। सुदीर्घ रजनी के बाद सुहानी सुबह की किरणें आई हैं। ऐसा लगता है, जैसे एक नए युग का सूत्रपात हुआ है। देशवासियों की उम्मीदें फिर से जगी हैं, उनकी आँखों में आशाएँ चमकी हैं। गणतंत्र दिवस, हर वर्ष जनवरी महीने की 26 तारीख को पूरे देश में देशप्रेम की भावना से ओत-प्रोत होकर मनाया जाता है। हम लोग हर साल 26 जनवरी का बेसब्री से इंतजार करते हैं; क्योंकि 26 जरवरी, 1950 को ही भारतीय संविधान को एक लोकतांत्रिक प्रणाली के साथ भारत देश में लागू किया गया था।

इस प्रकार 26 जनवरी को ही हमारे गणतंत्र का जन्म हुआ और भारत देश एक गणतांत्रिक देश बना। हमारे देश को आजादी तो 15 अगस्त, 1947 को ही मिल गई थी, लेकिन 26 जनवरी, 1950 को भारत एक स्वतंत्र गणराज्य बना और भारत देश में नए संविधान के माध्यम से कानून का राज स्थापित हुआ। यह दिन उन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को भी याद करने का दिन है, जिन्होंने अँगरेजों से भारत को आजादी दिलाने के लिए वीरतापूर्ण संघर्ष किया। आज के दिन ही भारत ने विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की स्थापना के लिए उपनिवेशवाद पर विजय प्राप्त की।

गणतंत्र दिवस हमारे संविधान में संस्थापित स्वतंत्रता, समानता, एकता, भाईचारे और भारत के सभी नागरिकों के लिए न्याय के सिद्धांतों को स्मरण करने और उनको मजबूत करने का स्वर्णिम अवसर है। हमारा संविधान ही हमें अभिव्यक्ति की आजादी देता है। अगर देश के नागरिक संविधान में प्रतिष्ठापित बातों का अनुसरण करेंगे तो इससे देश में अधिक लोकतांत्रिक मूल्यों का उदय होगा।

आज के दिन जब देश में पूरी उमंग और देशभक्ति के साथ गणतंत्र दिवस मनाया जाता है, तब देश में कुछ विघटनकारी तत्त्व भारतीय संविधान द्वारा भारत के नागरिकों को प्रदत्त अभिव्यक्ति की आजादी का दुरुपयोग कर भारतीय संविधान की प्रतियाँ जलाते हैं और भारत विरोधी नारे लगाते हैं। भारत में लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर करने के लिए सीमा पार से जो भी देशविरोधी कृत्य होते हैं—वे भी देश के अलगाववादियों की शह पर होते हैं। आज ऐसे देश और संविधानविरोधी तत्त्वों पर भारतीय संविधान के दायरे में रहकर कड़ी कार्रवाई करने की जरूरत है।

आज बेशक भारत विश्व की उभरती हुई शक्ति है, लेकिन आज भी अपना यह देश काफी पिछड़ा हुआ है। देश में आज भी कन्याजन्म को दुर्भाग्य माना जाता है और आज भी भारत के रूढ़िवादी समाज में हजारों कन्याओं की भ्रूणहत्या की जाती है। सड़कों पर महिलाओं पर अत्याचार होते हैं। सरेआम महिलाओं से छेड़छाड़ और बलात्कार के किस्से भारत में आज आम बात हो गए हैं। कई युवा एक तरफ जहाँ हमारे देश का नाम रोशन कर रहे हैं तो वहीं कई ऐसे युवा भी हैं, जो देश को शरमसार कर रहे हैं। दिनदहाड़े युवतियों का अपहरण, छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न कर देश का सिर नीचा कर रहे हैं। हमें पैदा होते ही महिलाओं का सम्मान करना सिखाया जाता है, पर आज भी विकृत मानसिकता के कई युवा घर से बाहर निकलते ही महिलाओं की इज्जत को तार-तार करने से नहीं चूकते। इस सबके लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार सही, संस्कारित करने वाली शिक्षा एवं संवेदनशीलता का अभाव है।

शिक्षा का अधिकार हमें भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के रूप में अनुच्छेद 29-30 के अंतर्गत दिया गया है, लेकिन आज भी देश के कई हिस्सों में नारी शिक्षा को सही नहीं माना जाता है। नारी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार के साथ भारतीय समाज को भी आगे आना होगा, तभी देश में अशिक्षा जैसे अँधेरे में शिक्षारूपी दीपक को जलाकर उजाला किया जा सकता है। आज भारत एक गणतांत्रिक देश है। जिसमें संविधान का पालन किया जाता है, लेकिन देश में महिलाओं पर अन्याय किया जा रहा है।

इक्कीसवीं सदी में समय के साथ सबको साथ-साथ ही चलना होगा। अगर देश को आगे बढ़ना है तो पुरुषों और महिलाओं के समान अधिकारों की बात करनी होगी और अपने समुदाय में समानता लानी होगी।

भारत बेशक एक स्वतंत्र गणराज्य वर्षों पूर्व पहले बन गया हो, लेकिन इतने सालों बाद आज भी देश में धर्म, जाति और अमीरी-गरीबी के आधार पर भेदभाव आम बात है। कुछ लोग आज भी जाति के आधार पर ऊँच-नीच की भावना रखते हैं। आज भी लोगों में सामंतवादी विचारधारा घर की हुई है और कुछ अमीर लोग आज भी समझते हैं कि अच्छे कपड़े पहनना, अच्छे घर में रहना, अच्छी शिक्षा प्राप्त करना और आर्थिक विकास पर केवल उनका ही जन्मसिद्ध अधिकार है। इसके लिए जरूरत है कि देश में संविधान द्वारा प्रदत्त शिक्षा के अधिकार के जरिए लोगों में जागरूकता लाई जाए, जिससे कि देश में धर्म, जाति, अमीरी-गरीबी और लिंग के आधार पर भेदभाव न हो सके।

आज भी हमारे देश में बाल अधिकारों का हनन हो रहा है। छोटे-छोटे बच्चे स्कूल जाने की उम्र में काम करते दिख जाते हैं। आज बाल मजदूरी समाज पर कलंक है। इसके खात्मे के लिए सरकारों और समाज को मिलकर काम करना होगा। साथ-ही-साथ बाल मजदूरी पर पूर्णतया रोक लगनी चाहिए। बच्चों के उत्थान और उनके अधिकारों के लिए अनेक योजनाओं का प्रारंभ किया जाना चाहिए, जिससे बच्चों के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव दिख सके।

शिक्षा का अधिकार भी सभी बच्चों के लिए अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। गरीबी दूर करने वाले सभी व्यावहारिक उपाय उपयोग में लाए जाने चाहिए। बालश्रम की समस्या का समाधान तभी होगा, जब हर बच्चे के पास उसका अधिकार पहुँच जाएगा। इसके लिए जो बच्चे अपने अधिकारों से वंचित हैं, उनको अधिकार दिलाने के लिए समाज और देश को सामूहिक प्रयास करने होंगे। आज देश के प्रत्येक नागरिक को बाल मजदूरी का उन्मूलन करने की जरूरत है और देश के किसी भी हिस्से में कोई भी बाल श्रमिक दिखे, तो देश के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह बाल मजदूरी का विरोध करे।

भारत में कानून बनाने का अधिकार केवल भारतीय लोकतंत्र के मंदिर संसद को दिया गया है। जब भी भारत में कोई नया कानून बनता है तो वो संसद के दोनों सदनों (लोकसभा और राज्यसभा) से पास होकर राष्ट्रपति के पास जाता है। जब राष्ट्रपति उस कानून पर बिना आपत्ति किए हुए हस्ताक्षर करते हैं तो वह देश का कानून बन जाता है।

हमारे देश में जनता के विकास के लिए कानून बने, साथ ही उसका क्रियान्वयन भी होना चाहिए। देश के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, भेदभाव आदि का समुचित निराकरण होना चाहिए। इसके लिए हम सबको मिलकर अपनी-अपनी जिम्मेदारी का ईमानदारी एवं साहसपूर्वक निर्वहन करना चाहिए। हम राष्ट्र के हैं और राष्ट्र हमारा है, यही प्रत्येक भारतवासी का सर्वोच्च जीवनमूल्य होना चाहिए। जो राष्ट्र के भौगोलिक, सांस्कृतिक व सामाजिक स्वरूप को विभाजित करे, उसे हर कीमत पर हमें दूर करना होगा। इस पर देश के सामान्य जन व राष्ट्र के नायकों को मिलकर विचार करना चाहिए। ❑

बाल विकास हेतु पूज्य गुरुदेव का चिंतन

परमपूज्य गुरुदेव का दर्शन महासागर की भाँति विस्तृत और गहन है। मानवीय जीवन के प्रत्येक आयामों का उन्होंने अत्यंत सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है एवं सभी पहलुओं पर समुचित मार्गदर्शन भी प्रदान किया है। ऐसा ही एक पहलू मानव शिक्षा का है। पूज्य गुरुदेव का शैक्षिक चिंतन अत्यंत व्यापक और मूल्य आधारित है। शिक्षा की शुरुआत बचपन से ही हो जाती है। बाल्यकाल से ही यदि शिक्षा का उचित प्रबंधन न किया जाए तो व्यक्तित्व के विकास में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। हमारी संस्कृति में प्राचीनकाल से ही माता-पिता एवं गुरुओं के द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा एवं संस्कारों का अत्यंत महत्त्व रहा है, परंतु वर्तमान की परिवार-व्यवस्था एवं शिक्षातंत्र से बाल विकास के अनेक महत्त्वपूर्ण पहलू गायब हो चुके हैं, जिसका असर बच्चे के पूरे जीवन पर पड़ता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शिक्षाशास्त्र विभाग के अंतर्गत बाल विकास के संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के शैक्षिक चिंतन पर एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। सन् 2016 में यह शोधकार्य शोधार्थी मनोज कुमार द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० ममता अरोरा के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध अध्ययन का विषय है—**'बाल विकास के संदर्भ में पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के शैक्षिक चिंतन का अनुशीलन'**। इस सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक अध्ययन को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय है— विषय प्रवेश। इसके अंतर्गत शोध विषय की प्रस्तावना, समस्या के स्रोत, पदों का विवरण, शिक्षा के स्वरूप एवं इस अध्ययन की आवश्यकता व महत्त्व का विवेचन किया गया है। बाल विकास में माता-पिता, शिक्षक, गुरु व वातावरण का अत्यधिक महत्त्व है। बालक के भविष्य का स्वरूप गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तक दी गई शिक्षा एवं संस्कारों के अनुरूप ही निर्धारित होता है। अच्छे संस्कार एवं सद्गुणसंपन्न व्यक्तित्त्व गढ़ने के लिए बाल विकास की प्रक्रिया को अपनाना समय की महती आवश्यकता है। आचार्य जी ने वर्तमान की शिक्षा-प्रणालियों को एकांगी बताते हुए शिक्षा के साथ-साथ विद्या की अवधारणा प्रस्तुत की है। उन्होंने बच्चों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास को भी आवश्यक बताया है।

द्वितीय अध्याय है—संबंधित साहित्य का अध्ययन एवं सर्वेक्षण। इस अध्याय के अंतर्गत प्रथम पक्ष में बाल विकास के संदर्भ में प्रमुख आधुनिक भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा रचित साहित्य का चिंतन प्रस्तुत किया गया है। इस चिंतन में रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, श्री अरविंद, स्वामी विवेकानंद एवं परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के विचारों को सम्मिलित किया गया है। अध्याय के दूसरे भाग में बाल विकास के संदर्भ में भारतीय पौराणिक साहित्य का चिंतन प्रस्तुत किया गया है।

इस पौराणिक चिंतन में शिव पुराण, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, नारद पुराण, देवी भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, वामन पुराण, गणेश पुराण, लिंग पुराण, आत्म पुराण एवं प्रज्ञा पुराण को लिया गया है। इन साहित्यिक आयामों में शोधार्थी ने यह पाया कि बाल विकास से संबंधित साहित्य की समीक्षा की जाए तो शिक्षा एवं अध्यात्म से जुड़े अधिकतर विद्वानों ने बालक के सर्वांगीण विकास को सर्वोपरि माना है। सभी आध्यात्मिक दृष्टिसंपन्न शिक्षाविदों ने बाल विकास के सभी पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं एवं यह माना है कि शरीर, मन, विचार, भाव, आत्मा—इन सभी का परस्पर घनिष्ठ संबंध है और बालक के जीवन में विकास की संपूर्णता के लिए सभी पहलुओं का विकास महत्त्वपूर्ण है।

तृतीय अध्याय है—शोध-प्रक्रिया। जिसके अंतर्गत ऐतिहासिक अनुसंधान विधि को प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक अनुसंधान-विधि में अतीत का अध्ययन करके

उन नवीन तथ्यों की खोज की जाती है, जिनसे वर्तमान समस्याओं को ठीक से समझा जा सके एवं उनके समाधान की दिशा में आगे बढ़ा जा सके। अध्ययन में शोधार्थी ने प्राथमिक स्रोत के रूप में आचार्य जी द्वारा बाल विकास के संबंध में रचित साहित्य को लिया है एवं द्वितीय स्रोत में आचार्य जी के चिंतन पर अन्यों द्वारा किए गए शोध अनुसंधान आदि कार्यों को सम्मिलित किया है।

चतुर्थ अध्याय है—पं० श्रीराम शर्मा जी के चिंतन में बाल विकास। इस अध्याय में सर्वप्रथम बाल विकास के विविध आयामों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन आयामों में गर्भावस्था, शैशवावस्था, पूर्व बाल्यावस्था, उत्तर बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में बाल विकास की महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अध्याय के दूसरे पक्ष में बाल विकास के विभिन्न घटकों के संदर्भ में पं. श्रीराम शर्मा जी के विचारों का विवेचन किया गया है। शिक्षा के विषय में आचार्य जी का दृष्टिकोण व्यापक है। उन्होंने जीवन के सभी घटकों एवं पहलुओं को अभिन्न रूप से प्रत्येक पल शिक्षा से जोड़ा है।

आचार्य जी के बाल विकास से संबंधित शिक्षा विचारों में बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक परिवर्तन के लिए विशेष मार्गदर्शन प्राप्त होता है। वे गर्भस्थ शिशु के लिए माँ का आहार-विहार, शुद्ध सात्त्विक दिनचर्या एवं सकारात्मक चिंतन, स्वाध्याय, जप, ध्यान आदि को आवश्यक मानते हैं। मानसिक विकास के लिए प्रेरणाप्रद साहित्य, घर का वातावरण, रुचिपूर्ण बाल साहित्य, कथा-कहानियाँ, प्रेरक दृष्टांत आदि से बालक की कल्पना शक्ति, विचार, तर्क, स्मरण जैसी क्षमताओं का विकास होता है।

बालक के संवेगात्मक विकास के संदर्भ में आचार्य जी की मान्यता में घर का वातावरण शांतिप्रिय और प्रसन्नता से भरा होना आवश्यक है। झूठ, कपट, ईर्ष्या, क्लेश आदि से बालक के मनोभावों पर विपरीत असर होता है। साथ ही योग-व्यायाम, सहयोग, सेवा और धैर्य जैसे गुणों का विकास भी आवश्यक है। बालक के सामाजिक विकास में बाल संस्कारशालाएँ अत्यंत सहायक हैं। साथ ही बच्चों को समूह में खेलने, चर्चा करने, पारिवारिक घटनाओं में भागीदार बनाने, गृहकार्यों में सहयोग के लिए प्रेरित करने से भी सामाजिकता की भावना प्रबल बनती है।

परमपूज्य गुरुदेव बालकों में आध्यात्मिक विकास को अत्यंत महत्त्व देते हैं; क्योंकि अध्यात्म ही जीवन निर्माण, चरित्र निर्माण की धुरी है। आध्यात्मिक विकास के लिए पुंसवन से लेकर यज्ञोपवीत-दीक्षा तक के सभी संस्कार कराने चाहिए। जन्मदिन व अन्य पर्व-त्योहारों से जुड़ी सत्प्रेरणाएँ भी बच्चों को समझाना चाहिए, ताकि उनके चरित्र में अच्छे मूल्यों का समावेश हो सके। सत्य, प्रेम, ईमानदारी, सेवा, दया, सहानुभूति, कर्त्तव्यपालन जैसे व्यक्तित्व के उच्च गुणों का विकास भी आध्यात्मिकता को विकसित करते हैं। इसके साथ ही गायत्री जप, यज्ञ, ध्यान, त्राटक, आत्मबोध व तत्त्वबोध आदि भी अध्यात्म के प्राण हैं, इनका बच्चों को नित्य अभ्यास कराना चाहिए।

फजूलखर्ची, बड़प्पन, बेईमानी ये गरीबी के गर्त में गिरने की पूर्व सूचनाएँ हैं। ऐसी आदतें अपने में थोड़ी मात्रा में भी पनपी हों तो छोटी दीखने वाली उस चिनगारी को लात से मसलकर बुझा ही दें। *—परमपूज्य गुरुदेव*

अंतिम अध्याय है—शोध सारांश, निष्कर्ष एवं निहितार्थ। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम सभी अध्यायों का सारांश प्रस्तुत किया गया है, तत्पश्चात अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए इसके महत्त्व एवं समसामयिक प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा बाल विकास के सभी पक्षों हेतु जो विचार दिए गए हैं, उन सभी प्रमुख विचारों एवं प्रक्रियाओं का इस शोध अध्ययन में समावेश है। यदि इन विचारों, सिद्धांतों को अपनाया जाए तो बालक का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित माना जा सकता है। आचार्य जी के शैक्षिक विचारों में शिक्षा के साथ विद्या का समन्वय है, जो बाल विकास की प्रक्रिया में उच्चतर मूल्यों और बालक के चरित्र निर्माण की आवश्यकता का सहज समाधान प्रस्तुत करता है। ❑

संसार से पलायन नहीं है अध्यात्म

श्रेय अपनी पढ़ाई-लिखाई पूरी कर एक उम्दा नौकरी पा चुका था, लेकिन उसके जेहन में तब भी एक गहरा असंतोष व्याप्त था। कॉलेज के समय से ही उसके हाथ आध्यात्मिक साहित्य लग चुका था, जिसके पारायण के साथ उसे समझ आ गया था कि जीवन का लक्ष्य नौकरी भर नहीं हो सकता, चाहे वह कितनी ही लुभावनी क्यों न हो। जीवन का वास्तविक उद्देश्य आत्मबोध है, जीवन को समग्रता में जानना व जीना है।

पुस्तकों का स्वाध्याय करते-करते वह थक चुका था; क्योंकि बौद्धिक जिज्ञासा का समाधान तो यहाँ मिल रहा था, आत्मा की प्यास भी एक स्तर तक बुझ रही थी, लेकिन जीवन के गहनतम एवं वैयक्तिक प्रश्नों के उत्तर यहाँ नदारद थे, जिनसे यदा-कदा उसका सामना होता, जो उसे भीतर से झकझोरते व समाधान माँगते थे। नौकरी के बीच असंतोष एक गहन रूप ले रहा था व विषाद इतना गहन हो चला कि एक रात वह अस्तित्व की खोज में घर-परिवार छोड़ निकल पड़ा।

खोज करते-करते श्रेय हिमालय की उपत्यकाओं में जा पहुँचा, जहाँ उसे पता चला कि यहाँ पहाड़ी पर एक कंदरा में कोई सिद्ध बाबा रहते हैं। श्रेय बीहड़ पगडंडियों को पार करते हुए पहाड़ी की निर्जन गोद में स्थित कंदरा तक जा पहुँचा। वहाँ ध्यानमग्न बाबा को देख श्रेय ने अपना भावनिवेदन प्रस्तुत किया। बाबा प्रौढ़ावस्था को पारकर वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहे थे। उनका कृषकाय किंतु गठा हुआ शरीर उनके कठोर तपस्वी स्वरूप को दरसा रहा था। उनके चेहरे पर अपूर्व तेज आध्यात्मिक आभा को प्रकट कर रहा था।

श्रेय को देखते ही बाबा ने उसे नाम लेकर पुकारा, जैसे उन्हें पूर्व से ही आभास हो कि कौन आ रहा है, किस मकसद से आया है। श्रेय साष्टांग प्रणाम कर उनके सम्मुख बैठ गया। बाबा ने रहस्यमयी मुस्कान के साथ कहा— "श्रेय, तुम घर-परिवार एवं संसार छोड़कर सत्य की खोज में तो निकले हो, लेकिन लक्ष्य अभी दूर है। इस निर्जन में जिसे पाने की इच्छा तुम रखते हो, उसकी पात्रता से अभी दूर हो, तुम्हारा कर्मक्षेत्र अभी संसार-समाज ही है।"

यह कुछ सुनकर श्रेय चौंका व थोड़ा क्षुब्ध हुआ कि जिसे वह पीछे छोड़कर आ चुका है, उसी संसार में उसे पुनः जाना पड़ेगा। उसके मन में सहज ही यह लालसा उठी कि बाबा मैं आपकी तरह निर्जन, एकांत में बैठकर स्वयं की खोज करना चाहता हूँ, जीवन के सत्य का संधान करना चाहता हूँ। आप मेरी इच्छा के विपरीत मार्ग सुझाकर मुझे भ्रमित कर रहे हैं। क्या आप कृपा कर मेरी इस दुविधा का समाधान कर सकते हैं?

गहराई से प्रकटे प्रश्न से प्रमुदित बाबा ने उत्तर दिया— "वत्स श्रेय! हम तुम्हारी खोज से सहमत हैं, खुश हैं। लाखों में कोई एक तुम्हारी तरह अस्तित्व की खोज की त्वरा लिए होता है, जो सब कुछ छोड़कर उसे पाने का माद्दा रखता है। यह निष्ठा एक बेशकीमती गुण है, जो तुम्हें इसी जन्म में लक्ष्यसिद्धि की पात्रता दे रही है, लेकिन हमारी तरह निर्जन एकांत में साधना अभी तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं है और न ही तुम इसे लंबे समय तक निभा पाओगे।"

"ऐसा क्यों गुरुदेव, हममें ऐसी क्या कमी है; जबकि हम हर कीमत चुकाने को तैयार हैं"—श्रेय ने कहा। बाबाजी इस पर गंभीर होकर दूर आसमान की ओर निहारते हुए श्रेय से बोले—"बेटा तुम्हारी निष्ठा पर हमें कोई संदेह नहीं है, किंतु प्रश्न तुम्हारे चित्त के जखीरे में निहित संस्कारों एवं कर्मबीजों का है, जो तुम्हें अधिक दिनों तक वन प्रांत के एकांत में नहीं रहने देंगे। हठपूर्वक रहोगे भी तो यहीं नया संसार बसने लगेगा।"

सुनकर श्रेय कुछ चौंका व उसने पूछा—"फिर हमारी राह क्या है?" बाबा बोले—"वही मैं तुम्हें सुझाने वाला था। अभी तुम संसार में जाओ, अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, घर-परिवार सँभालो, लेकिन जो भी कर्म करना उसे निष्काम भाव से संपन्न करना। चित्त के जो प्रबल संस्कार

अभी शेष हैं, वे जीवन के उतार-चढ़ाव के बीच, परिस्थितियों के विषम प्रवाह के बीच धुलते जाएँगे। जीवन में जो भी दुख-कष्ट आए, उसे तप मानकर सहन करना और जो भी सुख-भोग आएँ, उन्हें योग मानकर पार करना।''

श्रेय कहने लगा—''बाबा, मुझे कुछ-कुछ समझ आ रहा है। इसके साथ और क्या ध्यान रखना होगा।'' बाबा बोले—''इसके साथ स्वाध्याय को जीवन का अभिन्न अंग बनाना। जीवन में जो भी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ आएँगी, उनके बीच समभाव से रहने का अभ्यास करना। सजग होकर अपने मन में उठते विचार-भावों को पढ़ना। इनके प्रति सजग भाव-दृष्टि इन्हें क्रमशः क्षीण करेगी। जीवन के राग-द्वेष क्रमिक रूप में शांत होंगे। चित्त धीरे-धीरे उस स्थिरता को पाएगा, जहाँ एकांत में लंबे समय तक टिककर साधना करना संभव होगा।''

श्रेय को बाबा की बातें समझ आ चली थीं। वह अंतर्यामी बाबा को गुरु रूप में धारण कर चुका था। ऐसे त्रिकालदर्शी बाबा से भेंट को वह अपने पूर्वजन्मों के पुण्य का सुफल मान रहा था, जिनकी प्राज्ञदृष्टि उसके जीवन की भटकन को एक सुलझी राह के रूप में रूपांतरित कर रही थी। उसे समझ आ रहा था कि अब वह संसार से पलायन नहीं, उसका वीरता के साथ डटकर सामना करेगा। अपने कर्तव्य कर्मों के सम्यक निर्वाह के साथ एक कर्मयोगी की भावभूमिका में अपने चित्त को शुद्ध करेगा। समय पर वह पात्रता विकसित होगी, जिससे वह एकांत में अध्यात्म के उच्चस्तरीय प्रयोगों को संपन्न कर सके। इस समझ के साथ वह अपार धैर्य को धारण किए अपने घर-संसार की ओर बढ़ रहा था। ❑

पाप करने वाले का स्तर क्या है ? इस पर सजा निर्भर है। जिसके दायित्व बड़े-चढ़े हैं, उससे यदि ऐसा कुकृत्य हो तो उसकी सजा भी अलग होगी। एक बार चार जुआरी पकड़े गए। वे राजा के सामने पेश किए गए। राजा ने एक को छह महीने की जेल दी। दूसरे को पाँच सौ रुपया जुरमाना। तीसरे को कान पकड़कर दस बार उठने-बैठने की सजा दी और चौथे को इतना ही कहा—''आप भी!'' और उसे बिना कुछ दंड दिए रिहा कर दिया।

मंत्रियों ने एतराज किया—''एक ही जुर्म में एक साथ पकड़े गए अपराधियों को अलग-अलग प्रकार की सजा क्यों ?'' राजा ने कहा—''कल आप लोग जाकर देखना कि वे चारों क्या कर रहे हैं ?'' देखा गया तो जिसे जेल हुई थी, वह जेल में जाकर भी कंकड़ों की सहायता से दूसरे कैदियों को जुआ खिला और सिखा रहा था। जिसे पाँच सौ रुपया जुरमाना हुआ था, उसने उस नगर को छोड़कर दूसरे नगर में अपना धंधा करना शुरू कर दिया था। जिसे कान पकड़कर उठने-बैठने के लिए कहा गया था, उसने घर जाकर शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की कि वह कभी भी जुआ न खेलेगा और जिसे 'आप भी' कहकर रिहा कर दिया था, उसने सोचा कि हमारे खानदान की प्रतिष्ठा राजदरबार में धूमिल हो गई और शहर में जानकारी फैलने से मुँह दिखाने लायक न रहेगा, सो उसने वह राज्य छोड़ दिया और किसी अन्य देश के लिए चला गया। राजा ने सूचना के आधार पर कहा—''जुर्म ही नहीं, व्यक्ति का स्तर देखकर भी सख्ती और नरमी बरती जाती है।''

प्राणियों के प्राण का आधार हैं परमेश्वर

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय की तेरहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय के तेरहवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान, अर्जुन से कहते हैं कि मैं अर्थात परमेश्वर ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करते हैं और वे ही रसस्वरूप चंद्रमा बनकर समस्त औषधियों एवं वनस्पतियों को पुष्ट करते हैं। इस सूत्र के माध्यम से वे अर्जुन को यह स्पष्ट कहते हैं कि पृथ्वी, चंद्रमा आदि सब श्रीभगवान की ही अपरा शक्ति हैं अतः इनके उत्पादक, धारक, पालक, संरक्षक एवं प्रकाशक—सभी कुछ वे स्वयं ही हैं। दूसरे शब्दों में पृथ्वी से लेकर चंद्रमा में जो भी शक्ति है या हो सकती है, वह शक्ति भी ईश्वरप्रदत्त शक्ति है।

केनोपनिषद् में परब्रह्म परमात्मा के द्वारा देवताओं के मानहरण की कथा आती है। देवासुर संग्राम में विजय मिलने पर देवताओं को उस विजय का अभिमान हो गया तो उनके इस दर्प को भंग करने के लिए परमेश्वर उनके सम्मुख एक दिव्य यक्ष बनकर प्रकट हुए। यक्षरूपी परमात्मा ने एक तिनका सभी देवताओं के सम्मुख रख दिया तथा उनसे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को कहा। वायुदेव अपनी सारी शक्ति लगाने के बाद भी उस तिनके को उड़ा न सके तो वहीं अग्निदेव अपनी सारी शक्ति लगाने के बाद भी उस तिनके को जला न सके। तब सभी देवता माँ भगवती की शरण में पहुँचे। माँ भगवती ने देवताओं को बताया कि वे दिव्य यक्ष और कोई नहीं, वरन साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर ही थे। वे मात्र देवताओं को यह स्मरण दिलाने के लिए उपस्थित हुए थे कि देवताओं में उपस्थित शक्ति का एकमात्र कारण परमात्मा ही हैं। धरती को धारण करने वाला बल एवं चंद्रमा का अमृतमय स्वरूप—इन दोनों के पीछे भी उसी एक परम सत्ता का बल जिम्मेदार है। वे ही इन गुणों का आदि कारण हैं।]

इतना कहने के बाद श्रीभगवान अपने अगले सूत्र को कहते हैं—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥
॥ 14 ॥

शब्दविग्रह—अहम्, वैश्वानरः, भूत्वा, प्राणिनाम्, देहम्, आश्रितः, प्राणापानसमायुक्तः, पचामि, अन्नम्, चतुर्विधम्॥

शब्दार्थ—मैं (ही) (**अहम्**), सब प्राणियों के (**प्राणिनाम्**), शरीर में (**देहम्**), स्थित रहने वाला (**आश्रितः**), प्राण और अपान से संयुक्त (**प्राणापान-समायुक्तः**), वैश्वानर अग्नि रूप (**वैश्वानरः**), होकर (**भूत्वा**), चार प्रकार के (**चतुर्विधम्**), अन्न को (**अन्नम्**), पचाता हूँ (**पचामि**)।

अर्थात प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। ये समस्त सूत्र श्रीभगवान द्वारा एक ही संदर्भ में कहे गए हैं। इस श्लोक के माध्यम से भी वे ये ही कह रहे हैं कि जिस तरह बाहर फैले हुए प्रकाश के स्रोत—सूर्य, चंद्र एवं अग्नि का आधारभूत कारण मैं हूँ, पृथ्वी को धारण करने का बल एवं रसस्वरूप सोम की अमृतमय शक्ति मैं हूँ—उसी तरह से सभी प्राणियों के शरीर में निवास करने वाली प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर जठराग्नि में भी मैं ही हूँ—जो अन्न को पचाती है। इस तरह बाहर से लेकर भीतर तक की सभी शक्तियों का मूल कारण एवं आधार श्रीभगवान ही हैं।

दूसरे शब्दों में भगवान यहाँ ये कह रहे हैं कि जिस प्रकार अग्नि की प्रकाशशक्ति उनके ही तेज का अंश है, उसी प्रकार उसकी जो उष्णता है, उसकी जो पाचनशक्ति है, वह भी उनकी ही शक्ति का एक अंश है। इस शक्ति के माध्यम से वे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य एवं चोष्य अर्थात चबाकर

►'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◄

खाए जाने वाले, चाटकर खाए जाने वाले, निगलकर खाए जाने वाले एवं चूसकर खाए जाने वाले भोजन को पचाते हैं।

वैश्वानर अग्नि के संदर्भ में एक रुचिकर कथा आख्यानों में आती है। कैकय देश के राजा अश्वपति वैश्वानर विद्या के उपासक थे। उन्हीं दिनों पाँच गृहस्थ वेदज्ञों को वैश्वानर विद्या जानने की इच्छा हुई और इस आशय के साथ वे महर्षि आरुणि उद्दालक के पास पहुँचे एवं उनसे अपनी यह जिज्ञासा व्यक्त की। महर्षि उद्दालक ने इस विषय में अपनी अनभिज्ञता स्वीकारते हुए उनसे कहा—''इस विषय पर सबसे अच्छा ज्ञान तो राजा अश्वपति रखते हैं, अतः उन्हीं के पास जाकर इस विद्या को सीखना व समझना चाहिए।'' वे सब मिलकर राजा अश्वपति के यहाँ पहुँचे तो राजा ने उन सभी का अत्यंत सम्मान के साथ स्वागत-सत्कार किया। ऐसा करने के बाद राजा अश्वपति ने उन ऋषियों से उनके यज्ञ में ऋत्विज् होकर भाग लेने के लिए प्रार्थना की।

ऋषियों के वहाँ जाने के पीछे का कारण पौरोहित्य नहीं वरन विद्यार्जन था। अतः उन्होंने राजा अश्वपति के इस अनुरोध को ठुकरा दिया। उनके द्वारा इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने पर राजा अश्वपति को यह लगा कि संभवतया मेरे द्वारा कुछ पापकर्म हो गए होंगे, इसी कारण इन वेदज्ञ ऋषियों ने मेरा यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया है। यह सोचते हुए वे उनसे बोले—''ऋषिवर! मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, लोभी नहीं है, यज्ञहीन नहीं है एवं व्यभिचारी भी नहीं है। आप लोग बिना किसी संकोच के इस यज्ञ का भाग बन सकते हैं।'' यह सुनकर वे ऋषिगण बोले—''राजन्! यज्ञ का पौरोहित्य करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम यहाँ आपसे वैश्वानर-उपासना का ज्ञान लेने आए हैं। कृपया आप उसी का वर्णन करें।'' उनके आने का अभिप्राय जानकर राजा अश्वपति ने उनसे अगले दिन आने को कहा।

दूसरे दिन राजा अश्वपति ने उन्हें वैश्वानर-उपासना का रहस्य बताते हुए कहा—''वैश्वानर सारे लोकों में, सारे प्राणियों में एवं सारी आत्माओं में भोक्ता रूप में विद्यमान है। वही सब कुछ है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है।'' ऐसा कहते हुए वे बोले—''जो मनुष्य प्रतिदिन भोजन के समय प्राप्त अन्न को यज्ञ से मिला अन्न समझकर अपने उदरस्थ वैश्वानर का अग्निहोत्र करता है वह सारे लोकों, समस्त प्राणियों और समस्त आत्माओं को तृप्त करता है। राजा बोले कि प्राणियों के शरीर में रहने वाला वैश्वानर—परमात्मा की ही शक्ति का अंश है।

श्रीभगवान भी इस प्रस्तुत श्लोक में उसी सत्य की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि इस सृष्टि में जहाँ-जहाँ जो भी शक्ति, बल व सामर्थ्य का प्रतीक हैं—वे सब परमात्मा की ही शक्ति का एक अंश हैं। दुर्भाग्यवश इन कार्यों को अपने द्वारा किया जाने वाला समझकर हम व्यर्थ अभिमान करने लगते हैं; जबकि सभी शक्तियों के पीछे का कारण तथा आधार तो श्रीभगवान ही हैं। जो इस सत्य को समझ जाता है, वो ईश्वर का यंत्र बनकर, परमात्मा के हाथों का उपकरण बनकर एक दिव्य योजना का अंश बन जाता है। इस सूत्र के पीछे निहित दैवीय संदेश एवं ईश्वरीय आह्वान का यही मर्म है। □

एक बार एक साधु भूखे-प्यासे थे। उनके मन ने कहा—''काया को कष्ट क्यों देते हो? किसी घर से भीख माँग लो।'' साधु अभी एक ओर मुड़ने वाले थे कि आत्मा बोली—''जिससे माँगोगे, वह भी तुम्हारे जैसा ही होगा। तुम स्वयं क्यों नहीं कमा लेते?'' मन ने फिर कहा—''तुम तपस्वी हो, अपरिग्रही हो तुम्हें कमाना नहीं चाहिए।'' आत्मा ने तत्काल कहा—''जो अपरिग्रह, परिग्रह का दास हो उससे अच्छा परिग्रह ही है, जो कम-से-कम हाथ तो नहीं फैलाता।'' साधु ने आत्मा की बात सुनी और उस दिन से साधना-उपासना के साथ स्वावलंबी जीवन का अभ्यास भी आरंभ कर दिया।

बेहोशी से उबारती स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया

स्व-मूल्यांकन जीवन प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसके अभाव में व्यक्ति का जीवन बेहोशी में यों ही बीत रहा होता है, जिसमें न जीवनलक्ष्य स्पष्ट होता है और न ही अपने व्यक्तित्व के आयामों का बोध। न उसे अपनी दुर्बलताओं से परिचय हो पाता है और न जीवन की भावी रणनीति की कोई दिशाधारा बन पाती है। यदि कुछ होता भी है तो उस स्पष्टता का अभाव होता है, जो एक अर्थपूर्ण जीवन का आधार बने। इस बेहोशी से उबारने वाली प्रक्रिया का नाम है स्व-मूल्यांकन।

स्व-मूल्यांकन इस मानव जीवन के महत्त्व की समझ के साथ प्रारंभ होता है। नहीं तो यह यों ही गहरी बेहोशी में बरबाद हो रहा होता है। महापुरुषों के सत्संग एवं श्रेष्ठ साहित्य के अध्ययन से यह बोध जगता है कि मानव इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति है और मानवीय जीवन—सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ उपहार। इसमें वे सारी संभावनाएँ भरी हैं, जो स्वयं परमात्मा में हैं। अपनी मौलिक विशेषताओं के अनुरूप इनका जागरण तथा विकास करना होता है। स्व-मूल्यांकन की प्रक्रिया इस विशेष उद्देश्य को पूरा करती है, स्वयं से परिचय कराती है।

यह मूल्यांकन-प्रक्रिया प्रतिदिन कुछ समय माँगती है, यह नियमित रूप से अपना हाल-चाल पूछने व जानने का एक कार्यक्रम है, बल्कि हर पल चलने वाला एक उपक्रम है, जिसमें जीवन के लक्ष्य को खँगाला जाता है, व्यक्ति के चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार का लेखा-जोखा लिया जाता है। व्यक्तित्व के हर आयाम को जाँचा-परखा जाता है व इनको धार दी जाती है।

जैसा हम सोचते हैं, वैसे ही हमारे कर्म होते हैं, वही धीरे-धीरे हमारी आदतों का रूप लेते हैं, वैसे ही हमारे संस्कार बनते जाते हैं और इनसे हमारा आचरण-व्यवहार प्रभावित एवं निर्धारित होता है। अत: स्व-मूल्यांकन में अपने चिंतन एवं भावों के उतार-चढ़ाव पर तीखी नजर रखी जाती है। कहाँ पर हमारा आचरण-व्यवहार तय मानकों से डगमगा रहा है, इस पर ध्यान दिया जाता है। इनको चिह्नित कर फिर इनको दुरुस्त करने का प्रयास किया जाता है। इस तरह अपने चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार का नियमित परिष्कार व्यक्तित्व को सुगढ़ बनाता है, इसे मनोवांछित रूप देता है।

स्व-मूल्यांकन में अपनी जीवनशैली एवं दिनचर्या को भी जाँचा-परखा जाता है। क्या समय पर सोने व जागने की प्रक्रिया का पालन हो रहा या नहीं? यदि नहीं तो इसको सुधारा जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति हम कितने सजग हैं। नियमित रूप से इसके निमित्त कुछ प्रयास चल रहे या नहीं। यदि नहीं तो अपनी आवश्यकता एवं स्थिति के अनुरूप इनको शामिल किया जा सकता है। शरीर के साथ बौद्धिक विकास के लिए हम प्रयासरत हैं या नहीं। इसके लिए हम अपने अध्ययन की शैली का मूल्यांकन करते हैं। महापुरुषों की जीवनियों को पढ़कर हम आवश्यक प्रेरणा पा सकते हैं। अपनी रुचि के विषयों के अध्ययन को जोड़कर अपने बौद्धिक क्षितिज का विस्तार करते हैं।

बौद्धिक विकास के साथ भावनात्मक परिपक्वता एवं संतुलन के लिए हम कितने सचेष्ट हैं, यह भी महत्त्वपूर्ण है। क्या हम छोटी-छोटी बातों पर भावुक तो नहीं हो जाते, हमारा व्यवहार थोड़े से दबाव में बिफर तो नहीं जाता, कहीं हम तुनकमिजाज तो नहीं हैं। इनका मूल्यांकन कर हम अपने भावों के संयम, संतुलन एवं विकास को साधने का प्रयास करते हैं। इसके साथ व्यावहारिक समायोजन जुड़ा होता है। क्या हम आपस में तालमेल बैठाकर किसी महत्तर उद्देश्य के लिए कार्य कर सकते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि दूसरों की भावनाओं की परवाह किए बिना अहंकेंद्रित इक्कड़पन ही अपना स्वभाव बन बैठा है। इसे सुधारकर आत्मविकास एवं विस्तार की प्रक्रिया को गतिशील किया जा सकता है।

परिवार-समाज एवं गृहस्थ जीवन में आर्थिक संतुलन मूल्यांकन का एक पहलू है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। क्या आपात्काल के लिए, अपने बच्चों की शिक्षा, परिवार जनों के स्वास्थ्य एवं भावी आवश्यकताओं के लिए आवश्यक अर्थ का संचय है या नहीं—इन सबका मूल्यांकन कर आवश्यक अर्थ-उपार्जन एवं संग्रह की रीति-नीति

को निर्धारित कर अपने पुरुषार्थ का नियोजन किया जा सकता है।

इसी तरह अपने व्यक्तित्व को दुर्बल बना रही कमजोरियों को पहचानना स्व-मूल्यांकन का एक अभिन्न अंग है। चिह्नित होने पर फिर इन्हें ठोंक-पीटकर मजबूत किया जा सकता है। इसी तरह जीवन में सफलता के लिए आवश्यक कौशल का मूल्यांकन किया जा सकता है। सफल जीवन के लिए आवश्यक पेशेवर तकनीकी व जीवन कौशल का मूल्यांकन किया जा सकता है। जहाँ हम कमजोर पड़ रहे हैं, उनको सशक्त करने की रूपरेखा एवं कार्यक्रम बनाया जा सकता है।

इन सबके साथ नित्यप्रति रात्रि को सोने से पूर्व तत्त्वबोध की साधना स्व-मूल्यांकन को पूर्णता देती है, जिसके अंतर्गत दिनभर के कार्यों का लेखा-जोखा लिया जाता है। पूर्व में वर्णित व्यक्तित्व एवं जीवन के विभिन्न पहलुओं पर बैठकर शांत मन से विचार किया जाता है तथा उनका पुनरावलोकन किया जाता है। यदि संभव हो तो डायरी लेखन के माध्यम से उनको और स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। इस तरह के नियमित छोटे-छोटे प्रयास हमें चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार से जुड़ी बेहोशी से उबारते हैं और आत्मसुधार एवं निर्माण की प्रक्रिया के साथ इस जीवन की सार्थकता की अनुभूति प्रदान करते हैं। ❑

एक राजकुमार बड़े दुष्ट स्वभाव का था। नौकर भी उससे प्रसन्न न थे। नदी में नहाते हुए उसका पैर फिसला और वह बह गया। नौकरों ने मुँह फेर लिया। संयोगवश एक लकड़ी का मोटा लट्ठा बहता आ रहा था। उस पर एक सर्प, एक चूहा भी बहते-बहते चढ़ गए थे। राजकुमार भी उस पर चढ़ गया।

नदीतट पर एक साधु की कुटिया थी। उन्होंने लट्ठे के साथ बहते प्राणियों को देखा तो जान जोखिम में डालकर लट्ठे को किनारे पर खींच लाए। रात्रि डरावनी-काली थी और ठंढक कड़ाके की थी। सो उन्होंने लट्ठे को एक ओर से जलाकर गरमी उत्पन्न की। तीनों प्राणियों को तपाया और जो कुटिया में था, तीनों को खाने के लिए दिया। भोर होने पर वर्षा थमी तो सर्प ने साधु से कहा—''मेरा नाम मधुप है, इसी जंगल में रहता हूँ। आवश्यकता हो तो पुकारना। मेरे बिल में धन है, सो दूँगा।'' चूहे ने भी साधु महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और कहा—''जब आपको ईंधन की आवश्यकता हो तब आवाज दें, समीप ही रहता हूँ, मेरा नाम कुसुम है। पौधे और टहनियाँ काटकर आपके लिए ईंधन-समिधाएँ जुटा दिया करूँगा।'' अब राजकुमार की बारी थी। राजकुमार ने कड़ककर कहा—''तुमने मेरा उचित सम्मान नहीं किया, सो बदला लूँगा।'' घर पहुँचते ही उसने नौकर भेजे और साधु की झोंपड़ी तोड़-फोड़कर फिंकवा दी। उन्हें अन्यत्र दूसरी बनवानी पड़ी। वे सोचते रहे कृतघ्न की तुलना में तो साँप और चूहे अच्छे। मनुष्य के दुष्कृत्यों के समक्ष जीव-जंतुओं की बर्बरता भी कभी-कभी छोटी पड़ जाती है। ऐसे दुष्ट आचरण वाले व्यक्ति वस्तुतः मानवीय काया में पिशाच के समान हैं।

स्वाधीन राष्ट्र के स्वावलंबी गाँव

अथर्ववेद का एक मंत्र है—

विश्वं पुष्टं, ग्रामे अस्मिन अनातुरम।

अर्थात यह ग्राम (मनुष्यों का एक समूह गाँव) आतुरतारहित परिपुष्ट विश्व का परिचायक हो। जैसे विश्व अपने आप में स्वावलंबी, समग्र इकाई है, ऐसा ही प्रत्येक गाँव भी हो। भारत ग्रामप्रधान देश है। भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। गाँवों का विकास और समृद्धि ही राष्ट्रीय विकास एवं संपन्नता के पर्याय हैं। हमारे देश की विरासत बहुत श्रेष्ठ रही है। महान राष्ट्र की प्रत्येक इकाई, नगर-गाँव में उस श्रेष्ठता का गहरा पुट था। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का उद्घोष केवल नारा नहीं था, उसमें आत्मीयता की एक गहरी अनुभूति शामिल थी। वह मात्र आदर्श नहीं था, व्यावहारिक स्तर पर देश की प्रत्येक इकाई स्वयं को विश्व की परिपुष्ट व्यवस्था का एक अंग अनुभव करती थी।

मजबूत इमारत की हर ईंट मजबूत होनी चाहिए। नीरोग शरीर का प्रत्येक अंग-अवयव नीरोग होना चाहिए। इसी तरह स्वाधीन-स्वावलंबी राष्ट्र का हर घटक भी स्वाधीनता और स्वावलंबन का अनुभव करे, तभी राष्ट्र की श्रेष्ठता-महानता टिकाऊ हो सकती है। प्राचीन भारत की व्यवस्था ऐसी ही थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के लोग जब बंगाल पहुँचे तो उन्होंने वहाँ के गाँवों का सर्वे किया था। उसमें इस बात का उल्लेख है कि उस समय वहाँ 400 व्यक्तियों में एक स्कूल होता था अर्थात लगभग प्रत्येक गाँव में एक स्कूल था। शिक्षा की पद्धति आज से भिन्न, लेकिन उपयोगी थी, अक्षर ज्ञान के साथ सभी आवश्यक जानकारियाँ दी जाती थीं और अभ्यास कराए जाते थे। गाँवों की ग्राम पंचायतें उनकी व्यवस्था सँभालती थीं।

लॉर्ड मैकाले इंग्लैंड का एक मान्य शिक्षाविद् विचारक था। उसी ने भारत में काले अँगरेज पैदा करने वाली शिक्षानीति बनाई थी, जो उसी के नाम से जानी जाती है। सन् 1835 में ब्रिटिश संसद में भारत को अपने अधीन उपनिवेश बनाने पर चर्चा चल रही थी। उसमें मैकाले ने जो बयान दिया था, उसका सार-संक्षेप इस प्रकार है— मैंने पूरे भारत का भ्रमण किया है। वहाँ मुझे एक भी निरक्षर या भिखारी नहीं मिला। उनकी संस्कृतिनिष्ठ व्यवस्था के चलते हम भारत को गुलाम नहीं बना सकते। यदि ऐसा करना है तो उनकी रीढ़ की हड्डी, उनकी परंपरागत सहज-स्वावलंबी व्यवस्था को तोड़ना पड़ेगा। उन्होंने यही किया और उसमें सफल हुए। भारत स्वतंत्र हो जाने के बाद भी अभी तक हम उनके रचे कुचक्र से उबर नहीं पाए हैं। उस गौरवमय ग्राम-व्यवस्था को पुनः जाग्रत नहीं कर पाए हैं।

ग्रामप्रधान देश भारत की व्यवस्था और उसमें आए विभिन्न उतार-चढ़ावों का प्रामाणिक वर्णन संत विनोबा भावे की पुस्तक ग्राम स्वराज्य में सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश है— हमारे देश की विभिन्न अवस्थाएँ रही हैं। पहले आजाद गाँवों का आजाद देश था। अँगरेजों के आने के पहले मुसलमानों का राज्य था। तब मुगल राजाओं के समय वह आजाद गाँवों का गुलाम देश था। तब देश पराधीन था, लेकिन गाँव स्वाधीन थे। गाँव-गाँव का कारोबार गाँववाले स्वयं चलाते थे। गाँव-गाँव में ग्राम पंचायतें काम करती थीं और गाँव के बारे में सोचती थीं। सरकार को टैक्स देने तक ही उनका सरकार से संबंध था।

पंचायत-व्यवस्था कैसी थी, इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है—गाँव-गाँव में ग्राम पंचायतें थीं। उनकी प्रवृत्तियों में एक प्रवृत्ति थी—स्कूल चलाने की, दूसरी न्याय, तीसरी व्यवस्था करने आदि की थी और गाँव में जितने काम चलते थे, उनके लिए थोड़ा-थोड़ा हिस्सा हर किसान से मिलता था। बहुत बड़ी ग्रामीण योजना थी। जमीन व्यक्तिगत नहीं थी। जैमिनी के मीमांसाशास्त्र में स्पष्ट कहा है कि जमीन की मालिकी भगवान की है, जो खेती करेगा, उसकी है, राजा की नहीं। ग्राम पंचायत की व्यवस्था में एक यह बात थी कि फसल आएगी तो उस पर सबका अधिकार है। वैद्य, बढ़ई, कुम्हार, चमार, बुनकर आदि सबकी सेवाएँ गाँव की मानी गई थीं। जितने ग्रामोद्योग करने वाले थे, वे गाँव के सेवक थे, किसी घर के नौकर नहीं। यह सारी व्यवस्था देखने की

जिम्मेदारी ग्राम पंचायत की थी। एनी बेसेंट की किताब में भी ठीक उसी तरह का वर्णन मिलता है—गाँव का सारा कारोबार ग्राम पंचायत देखती थी। गाँव की तरफ से ग्राम पंचायत को अच्छी आमदनी होती थी; क्योंकि गाँव में काफी अच्छे धंधे चलते थे। गाँव की आवश्यकता की चीजें गाँव में ही पैदा हुआ करती थीं।

स्थानीय जरूरतों की लगभग सभी वस्तुएँ गाँव में ही उपजती व बनती थीं। यही नहीं, उत्पादन अपनी जरूरत से अधिक होता था, जिसे व्यवसायी वर्ग के लोग शहरों और विदेशों में बेचते थे। अध्ययन के अनुसार अँगरेजों के शासन से पहले विश्व-व्यापार में भारत का योगदान लगभग 23% था। जब अँगरेज विदा हुए तो वह योगदान केवल 3% के लगभग रह गया था। यह कैसे हुआ? इस संबंध में ग्राम स्वराज्य पुस्तक के कुछ उद्धरण महत्त्वपूर्ण हैं—अँगरेज यहाँ आए और उन्होंने यहाँ की ग्राम पंचायतों और ग्रामोद्योगों को समाप्त कर दिया। हमारी ग्राम संस्थाएँ टूट गईं। परिणाम यह हुआ कि देश तो पराधीन बना ही, गाँव भी पराधीन बन गए। पराधीन गाँवों का पराधीन देश हो गया।

अँगरेजों ने भारतीय आदर्श ग्राम-व्यवस्था को योजनाबद्ध ढंग से तोड़ा। यह तथ्य नीचे लिखे उद्धरणों से स्पष्ट होता है—भारत पर अनेकों ने हमले किए, लूटा लेकिन ग्राम-व्यवस्था टूटी नहीं। अँगरेजों ने वह काम किया और उसमें वे सफल हुए। उन्होंने गाँव का सर्वे इसलिए किया कि गाँव में कौन-सा कच्चा माल होता है, यह देखकर अपने देश में भेजना और वहाँ से पक्का माल लाना। इस तरह वे अपना व्यापार बढ़ाना चाहते थे। यह सारा अँगरेजों के आने के बाद हुआ। गाँवों के उद्योग खतम हो गए तो ग्राम पंचायतें टूट गईं और देखते-देखते गाँवों की हालत यह हो गई कि वे निरक्षर हो गए। जो लोग कुछ थोड़ा-सा शिक्षण पा सके, वे गाँवों को छोड़कर शहरों में चले गए और सारे गाँव शिक्षणहीन, ज्ञानहीन, संपत्तिहीन बन गए।

अँगरेजों के जाने के बाद देश तो स्वाधीन हुआ, लेकिन गाँवों की पराधीनता दूर नहीं की जा सकी। आज हम भारत को पराधीन गाँवों का स्वाधीन देश ही कह सकते हैं। इस दु:खद स्थिति से जितनी जल्दी उबरा जा सके, उतना ही अच्छा है। मनीषियों ने इसीलिए राजनीतिक स्वाधीनता के बाद राष्ट्र में सांस्कृतिक स्वाधीनता लाने के लिए व्यापक आंदोलन खड़ा करने के लिए जोर दिया है। स्वदेशी आंदोलन को भी इसी व्यापक दृष्टि से समझना और अपनाना होगा।

स्वदेशी की अवधारणा हमारे देश में वैदिककाल से ही है। उसका संकेत प्रारंभ में किया भी जा चुका है। वर्तमान संदर्भ में 'स्वदेशी' आंदोलन की शुरुआत देश को अपंग बनाने वाले ब्रिटिश कुचक्रों को तोड़ने के लिए की गई थी। अँगरेजों द्वारा भारत पर थोपी गई गुलामी को हटाने के लिए ऐसा करना जरूरी हो गया था। वे सोने की चिड़िया भारत का लाभ उठाने के उद्देश्य से आए थे। उन्होंने अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए भारत की सनातन-स्वावलंबी व्यवस्था को तहस-नहस किया। भारत में पैदा कच्चे माल को अपने यहाँ उपयोगी रूप देकर उसे भारत में ही अच्छी कीमत पर बेचने की कूटनीतिक चाल उन्होंने चली थी। उसकी काट यही थी कि भारत का कच्चा माल भारत में ही उपयोगी बने और यहीं बिके—यही समाधान था। इसलिए इंग्लैंड में बने माल का विरोध करने और भारतीय उत्पाद खपाने की नीति बनी।

स्वदेशी का पहला नारा सन् 1872 में श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने दिया था। उन्होंने कहा था—जो विज्ञान स्वदेशी होने पर हमारा सेवक होता, वह विदेशी होने के कारण हमारा स्वामी बन बैठा है। हम लोग लगातार साधनहीन होते जा रहे हैं। अतिथिशाला में आजीवन रहने वाले अतिथि की तरह हम स्वामी के आश्रय में पड़े हैं। यह भारतभूमि भारतीयों के लिए भी एक विशाल अतिथिशाला बन गई है। इस वैचारिक सत्य ने लोगों को प्रभावित किया। सन् 1874 में भी भोलानाथ चंद्र, श्री शंभू मुखोपाध्याय द्वारा निकाली जाने वाली पत्रिका 'मुखर्जीज मैग्जीन' में स्वदेशी का नारा सशक्त ढंग से उभारा।

उन्होंने इस संदर्भ में लिखा था—किसी प्रकार का शारीरिक बल प्रयोग न करके, राज्यादेशों को अस्वीकार किए बिना, उनसे कोई नया कानून बनाने की प्रार्थना किए बगैर भी हम अपनी पूर्व संपदा वापस पा सकते हैं। जहाँ स्थिति चरम पर पहुँच जाए, वहाँ नैतिक शत्रुता एक कारगर अस्त्र बन सकती है। हमारे लिए इस अस्त्र को अपनाना कोई अपराध नहीं है। हम सब लोग यह संकल्प करें कि विदेशी वस्तु नहीं खरीदेंगे। हमें हर समय यह बात याद रखनी चाहिए कि भारत की उन्नति भारतीयों के द्वारा ही संभव है।

विचारों के साथ आंदोलन गति पकड़ता गया। सन् 1903 में 'सरस्वती पत्रिका' में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' छपी। सन् 1905 में बंगभंग आंदोलन से इसे गति मिली। तभी कांग्रेस पार्टी ने भी इसके पक्ष में मत प्रकट किया। सन् 1911 में बंगभंग की वापसी के बाद भी यह आंदोलन निर्बाध रूप से चलता रहा। महर्षि अरविंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, वीर सावरकर, लोकमान्य तिलक और लाला लाजपत राय आदि स्वदेशी आंदोलन के मुख्य उद्घोषक रहे। आगे चलकर यही स्वदेशी आंदोलन महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन का केंद्रबिंदु बन गया। उन्होंने इसे 'स्वराज की आत्मा' कहा था।

आज के संदर्भ में स्वदेशी आंदोलन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि भारत फिर से स्वाधीन गाँवोंवाला 'स्वाधीन देश' व स्वावलंबी गाँववाला 'स्वावलंबी देश' बने। प्रश्न उठता है कि हमारे रोजमर्रा के उपयोग की वस्तुओं, उत्पादनों को विदेशी कंपनियों से छीनकर वैसी ही सोच वाली कुछ स्वदेशी कंपनियों को दे भी दिया जाए तो गाँवों का क्या भला होगा? इस प्रश्न का समाधान है कि हमें गाँवों के सांस्कृतिक, आर्थिक स्वावलंबन को ध्यान में रखकर इस आंदोलन को चलाना होगा।

दुनिया में राष्ट्र को नेशन या स्टेट की संज्ञा दी जाती है। आजकल पश्चिमी राष्ट्र राज्य की अपेक्षा तकनीकी आर्थिक इकाइयों (टेक्नो एकोनोमिक यूनिट्स) का रूप ले चुके हैं; जबकि भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। सैकड़ों राज्यों में बँटा भारत इसी आधार पर आदर्श राष्ट्र रहा है। अँगरेजों ने राष्ट्र की सांस्कृतिक स्वचालित व्यवस्था को तोड़कर ही भारत को दीन-हीन बनाया। उसे पुनः समर्थ-सशक्त राष्ट्र बनाने के लिए तकनीकी और आर्थिक स्वावलंबन के साथ सांस्कृतिक स्वावलंबन भी विकसित करना होगा।

यदि भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'विश्व बंधुत्व' की सांस्कृतिक मान्यता न जागी तो क्या होगा? बढ़ी हुई तकनीक और संपन्नता का उपयोग स्वार्थप्रेरित आसुरी प्रयोजनों में होने लगेगा। उस शक्ति को जन-जन के शोषण के लिए इस्तेमाल किया जाने लगेगा। आज की बड़ी समस्या यही है कि तकनीकी और आर्थिक सामर्थ्य को लोकहित में कैसे लगाया जाए?

वर्तमान में सभी शहरवासियों का पोषण गाँव में पैदा फसल द्वारा ही हो रहा है। पोषण पाने वाले खूब संपन्न हैं, और पोषण देने वाले अधिकांश विपन्न हैं और आत्महत्या के लिए प्रेरित हो रहे हैं। आलू के चिप्स और गेहूँ के नूडल्स, मैगी, पीजा जैसे पदार्थ मुँहमाँगे दामों में बिक रहे हैं और उन्हें पैदा करने वाले को निर्वाह के लिए उचित साधन भी नहीं मिल रहे हैं।

इन सब समस्याओं से निपटने के लिए जरूरी है कि गाँव का कच्चा माल गाँव में ही पके और पके माल की कीमतों में उत्पादक की भी भागीदारी रहे। इसके लिए तकनीकी-प्रशिक्षण और सहयोग—गाँववालों को दिया जाए, साथ ही व्यापारिक संस्थान भी खड़े किए जाएँ, जो उत्पाद की खपत का तंत्र बनाएँ और उत्पादक को व्यापारिक लाभांश का भागीदार बनाएँ।

इस तरह के प्रयोगों को हिंदी में व्यावसायिक, पारमार्थिक मंडल कहा जा सकता है। इस तरह के प्रयोग छोटे-छोटे स्तर पर हर क्षेत्र में किए जाने चाहिए। इस दिशा में जागरूकता आने भी लगी है। इस तरह के प्रयोगों को प्रोत्साहन और समर्थन तो दिया ही जाना चाहिए एवं साथ ही जगह-जगह उनके जैसे और भी क्रम चलाए जाने चाहिए। ❑

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥

—ऋग्वेद १०/१८६/२

अर्थात हे वायु! आप हमारे पिता के तुल्य जन्म देने वाले, बंधु के समान प्रिय और मित्र के समान हितकारी हैं। आप हमें जीवन-यज्ञ में सफल बनावें।

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—3

आध्यात्मिकता का आधार-पारिवारिकता

(अंतिम किस्त)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस संबोधन में पारिवारिकता को आध्यात्मिकता का एक महत्त्वपूर्ण आधार एवं मेरुदंड बताते हैं। वे कहते हैं कि जो पारिवारिकता के भाव का सम्यक निष्ठा के साथ अनुशीलन करते हैं, बाँटने एवं सहयोग करने की वृत्ति को जीवन के प्रत्येक आयाम में आत्मसात् करते हैं, शालीनता को धारण करते हैं, संयमशीलता का पालन हर समय करते हैं—वे न केवल एक संस्कारवान परिवार का आधार गढ़ते हैं, वरन वे स्वयं के जीवन में आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों की प्रतिष्ठा भी करते हैं। परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार, पारिवारिकता के सिद्धांत अध्यात्म के सही व सच्चे स्वरूप का आधार भी हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

अपने फर्ज को न त्यागें

मित्रो! ये देवी जी, सरस्वती जी, लक्ष्मी जी, गायत्री जी, इनको सारी जिंदगी हमने कपड़े पहनाए, मिठाई खिलाई, पर एक दिन भी यह नहीं कहा कि गुरुजी! हमारे यहाँ केले का पिटारा रखा हुआ है। इसमें से चार केले आप ले जाइए और खा लीजिए। उनके पास रखे तो रहे, कीड़ों ने तो खा लिए, चूहों ने तो खा लिए। वे केले रखे-रखे सूख गए, सड़ गए; पर उन्होंने हम से नहीं कहा कि साहब! आप हमारे भगत जी हैं, पंडित जी हैं, ये केले खा जाइए। तो साहब! आप ने पूजा-पाठ छोड़ दिया? नहीं, हमने कुछ नहीं छोड़ा; क्योंकि फर्ज एकांगी होते हैं। आपकी पत्नी कैसी है? बड़े कड़ुए स्वभाव की है, तो आप अपना फर्ज पूरा कीजिए। बीबी अपना फर्ज पूरा नहीं करती, तो हम क्या करें? नहीं साहब! वह कटु स्वभाव की है और हमारा कहना नहीं मानती। बड़ी ढीठ और उजड्ड है, ठीक है। समझाने की कोशिश कीजिए, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं होता है कि आपके जो फर्ज हैं, आप उन्हें भी त्याग देंगे। आप अपने फर्ज को मत त्यागिए।

मित्रो! दूसरे आदमी आपके लिए अपने फर्जों को पूरा नहीं करते। अपने कर्त्तव्यों को पूरा नहीं करते, तो आप क्या कर रहे हैं? आप किसी पर दबाव तो नहीं डाल सकते, आप उन्हें मजबूर तो नहीं कर सकते, आप दूसरे आदमी के गुलाम तो नहीं हैं, वे आपके लिए तो नहीं बने हैं, न जाने कौन से जन्मों के संस्कार उनके भीतर जमा हो गए हैं, उन संस्कारों के कारण बेचारे न जाने कैसी-कैसी जिंदगी जी रहे हैं? आप अपनी जिंदगी जी रहे हैं और चाहते हैं कि वे अपने हिसाब से जियें। आप उनको नौकर बनाना चाहते हैं, गुलाम बनाना चाहते हैं। आप उनके मालिक बनना चाहते हैं। आप किसके-किसके मालिक बनेंगे?

पहले आप अपने शरीर के तो मालिक बन जाइए। अपनी आँख के तो मालिक बन जाइए। आपने आँख से कहा था न कि खबरदार, हमारी बात नहीं मानी तो? हाँ साहब! कहा था। जब आँख दुःखने लगी तो कहा था कि तुम हमारा कहना नहीं मानती हो। तुम अच्छी हो और हमारा कहना मान लो, पर वह मानी ही नहीं। अच्छा तो आपके घुटने में दरद होता है? हाँ साहब! घुटने हमको बहुत तंग करते हैं और चलने नहीं देते। आपने घुटनों से कहा नहीं कि या तो आप हमारा कहना मानिए, नहीं तो हम डंडों से पिटाई करेंगे। नहीं साहब! हमने तो कुछ भी नहीं कहा। क्यों? जो आपका कहना नहीं मानेगा। उसे डंडे से पिटाई नहीं करेंगे? जरूर करना, जो कोई भी कहना नहीं माने।

कुटुंबपालन का आध्यात्मिक सिद्धांत

मित्रो! आँख, कान, घुटना जो भी कहना न माने, तो आप उसकी पिटाई लगाना और सिर जब नींद न आने दे, तब भाई साहब! ऐसा करना कि एक पत्थर लेना और सिर को फोड़ डालना। नहीं साहब! हम ऐसा नहीं कर सकते, तो फिर बीबी को क्यों मारा? सबके ऊपर आप हुकूमत चलाना चाहते हैं? सबके मालिक बनते हैं। आप सबके बॉस हैं, आप सबके भगवान हैं? आपने दूसरे आदमियों को खरीद रखा है? ऐसा मत कीजिए। यह गलतफहमी है। अपने व्यक्तित्व को विकसित करके सारे विश्वमानव के सामने उदाहरण प्रस्तुत करना है। यह आप अपने घर से सीखिए। सिद्धांतों को घर से सीखिए। घर का पालन करने का मतलब, परिवार बसाने का मतलब, परिवार में रहने का मतलब सिर्फ यह है कि आदमी अपने आध्यात्मिक सिद्धांतों को विकसित करता हुआ चला जाए। एक और भी आध्यात्मिक सिद्धांत है—कुटुंब के पालन करने का, इसका तात्पर्य यह है कि दूसरे आदमी को खुशहाल ही नहीं, बल्कि समझदार भी बनाइए। समझदार बनाने का मतलब अक्लमंद नहीं है, वरन समझदार बनाने से मतलब सुसंस्कृत और सभ्य बनाने से है।

मित्रो! अगर आपने अपने बच्चों को सभ्य नहीं बनाया। अपनी पत्नी, अपने भाई, अपनी बहनों को सभ्य नहीं बनाया। अपने कुटुंबी-रिश्तेदारों को सभ्य नहीं बनाया, तो देख लेना, वे आपकी नाक में दम कर देंगे। अगर आपने इन्हें खुशहाल बनाया है, तो खुशहाल होना है। अगर आप गरीब हैं और आपने—अपने बच्चों को सुसंस्कारी बना दिया है, तब? तब आपके बच्चे श्रवण कुमार के तरीके से आपकी आँखें जाने के बाद भी कंधे पर काँवड़ में बैठाकर के तीर्थयात्रा करा सकते हैं। आपकी आज्ञा का पालन कर सकते हैं।

आप भले ही गरीब क्यों न हों, अगर आपने—अपने बच्चों को संस्कारवान बना दिया है, तो आपके बच्चे अपने कंधों पर बैठाकर के ले जाएँगे। अगर संस्कारवान नहीं बनाया, तब? तब भाई साहब! मैं किसके-किसके किस्से सुनाऊँ? आपको औरंगजेब का किस्सा बताऊँ, आपको शाहजहाँ का किस्सा बताऊँ। कितने सारे मुसलमान खानदानों के किस्से बताऊँ, जिन्होंने अपने बाप को जेल में डालकर गद्दी पर अधिकार किया। इतिहास में ऐसे अनेक राजा हुए हैं, हजारों के नाम गिना दूँ। यह तो पुराने इतिहास की याद आ गई, सो एक-दो नाम बता दिए। आप से निवेदन है कि आप लोग उन सभी को संस्कार बनाएँ, जो आप से ताल्लुक रखते हैं। जो आपके आश्रित हैं, जो भी आपके समाज में आते हैं, जो आपके कुटुंब में आते हैं, उन्हें खुशहाल बनाने की अपेक्षा संस्कारवान बनाएँ।

मित्रो! आपका दायरा सीमित है, अपनी मरजी तक और अपने अहंकार तक सीमित है। अपनी खुशहाली तक ही सीमित है, तो मैं आपको क्या कहूँ? फिर मुझे आपको पिशाच कहना पड़ेगा और जब आप इससे भी आगे बढ़ जाते हैं और भी छोटे दायरे तक सीमित हो जाते हैं, जिसमें आपकी बीबी, बच्चे और खानदान वाले ही आते हैं, तो मैं और कहूँ। जानवर तो नहीं कह सकता, पर आपको इनसान भी नहीं कहूँगा। इनसान के दायरे से आप कम हैं। इनसान और जानवर के बीच का कोई आदमी कह सकता हूँ, जैसे नृसिंह भगवान ने जन्म लिया था। नृसिंह भगवान कैसे थे? ऊपर से तो थे—शेर और नीचे से आदमी और भी थे कई—कच्छ, मच्छ थे। चेहरा तो आदमी का था और शरीर कछुए का, जो पानी में तैरते थे। आप मुझे उसी तरह के मालूम पड़ते हैं। मैं आपको उसी बिरादरी में सम्मिलित करता हूँ। अभी मैं आपको इनसान की बिरादरी में शामिल नहीं कर सकता; क्योंकि आप तो सीमित हैं। इनसान का दायरा घर से समाज तक, राष्ट्र तक फैला होता है। इनसान के सामने समाज भी होता है। इनसान के सामने संस्कृति भी होती है और इनसान के सामने राष्ट्र, विश्व भी होता है। इनसान के सामने इनसानियत नाम की कोई चीज भी होती है। नहीं साहब! हमें तो किसी और से नहीं, केवल भगवान से काम है। चलिए बाकी बात मैं पीछे करूँगा, पहले भगवान की बात बता देता हूँ।

भगवान विराट का नाम है

मित्रो! भगवान तो विराट को कहते हैं। अर्जुन को भगवान ने विराट रूप दिखाया था। वह मानता ही नहीं था, बार-बार कहता था कि अपना दर्शन करा दीजिए, तो भगवान ने कहा—इन चमड़े की आँखों से मेरा दर्शन कहाँ से होता है? मैं तुझे ज्ञान के चक्षुओं से करा दूँगा, तो करा दीजिए और उन्होंने अपना विराट रूप दिखाया अर्थात मानव समुदाय को दिखाया। कहा—देख हमारा रूप यह है। सेवा करनी हो, तो इसकी कर; समर्पण करना हो, तो इसको कर; आरती करनी हो, तो इसकी कर; पूजा करनी हो, तो इसकी कर। नहीं साहब! हम तो भगवान की पूजा करते हैं। कौन-सा

भगवान? बताइए तो सही कि कौन से भगवान की पूजा करते हैं। साहब! वो बैल पर बैठकर घूमता है और चूहे पर बैठकर घूमता है और उल्लू पर बैठकर घूमता है। बेकार की बकवास बंद कीजिए। भगवान न उल्लू पर बैठकर घूमता है और न बैल पर बैठकर घूमता है। वह आदमी के गुणों पर, भावनाओं पर और आदमी की संस्कृति पर बैठकर घूमता है। आदमी के आचरण पर बैठकर घूमता है। ऐसा है भगवान, जिसको हम सिद्धांत कहते हैं, आदर्श कहते हैं। नहीं साहब! हमको तो भगवान रात में सपने में दिख गए थे। बेकार की बातें करते हैं। दिन में सपने क्यों देखते हैं? सपनों की दुनिया में ही घूमते रहेंगे, या वास्तविकता को भी समझेंगे?

मित्रो! मुझे ऐसे लोगों के ऊपर गुस्सा आता है, जो वास्तविकता से लाखों मील दूर हैं। महा अज्ञान के जंजाल में फँसे हुए हैं। मैं फिर आपसे कहता हूँ कि आध्यात्मिकता की उपासना के लिए आपको जिस तपोवन की जरूरत है, वह आपके अपने घर-परिवार से बेहतरीन तपोवन आपको कहीं भी नहीं मिलेगा। आपको क्या करना पड़ेगा? जहाँ तक कि आपका जितना बड़ा कुटुंब है, अगर छह आदमियों का है, तो आप उन सबको समुन्नत बनाइए। समुन्नत का अर्थ है—स्वावलंबी, जो अपने पैरों पर स्वयं खड़े हों। आपके बच्चे स्वयं कमाकर खाएँ। नहीं साहब! हम तो इतनी धन-दौलत छोड़कर जाएँगे कि हमारी औलादें बैठकर खाएँगी, तो आपकी औलादें कैसी हैं? अंधी हैं, बहरी हैं, गूँगी हैं, अपाहिज हैं, जो बैठकर खाएँगी। आप ऐसी गलती मत करना। इन्हें स्वावलंबी बनने देना, अपने पसीने की कमाई खाने देना, ताकि उन्हें खरच करने की तमीज आ जाए। जिस आदमी ने अपने हाथ से कमाया है, वही सोच-समझकर खरच करेगा। जिसने मेहनत से नहीं कमाया, हराम से कमाया है, चाहे जेब काटकर कमाया हो, चाहे बाप से उत्तराधिकार में मिला हो, वह सारे-के-सारे पैसे को शराबखोरी में, गलत कामों में खरच करेगा। आप ऐसा करेंगे क्या?

सिद्धांतों का नाम है आध्यात्मिकता

मित्रो! मैंने कुछ खरी बातें कहने के लिए आपको बुलाया है। आपका लगाव पैसे में हो सकता है और आपका लगाव कुटुंब में हो सकता है, लेकिन लगाव है—चाहे पैसा हो, चाहे कुटुंब हो, चाहे विद्या हो, चाहे दूसरी चीजें हों, लेकिन आप उन्हें सिद्धांतों के साथ समाविष्ट कर लीजिए। आध्यात्मिकता सिद्धांतों का नाम है। आध्यात्मिकता टेक्निक का नाम नहीं है। रामायण पढ़ने की टेक्निक को अध्यात्म नहीं कहते और अखंड कीर्तन की टेक्निक को अध्यात्म नहीं कहते और माला घुमाने की टेक्निक को अध्यात्म नहीं कह सकते। ये अध्यात्म के कलेवर तो हो सकते हैं, उपचार तो हो भी सकते हैं, पर ये उपचार कहलाएँगे। वास्तविकता वहाँ से प्रारंभ होगी, जहाँ से उपचारों के माध्यम से आप अपने गुणों को, कर्म को और स्वभाव को विकसित करना शुरू करेंगे। कलम अपने आप में उपयोगी हो सकती है, लेकिन शर्त यह है कि इसके सहारे आप विद्या पढ़ना सीखें। अरे साहब! जब हमारे पास पेन है, तो लिखना क्यों सीखें? माला हमारे पास है, तो हम जीवन को परिष्कृत क्यों करेंगे? जब हम देवी की पूजा कर ही लेते हैं, तो हमको आध्यात्मिकता

यहूदी धर्माचार्य रबी बर्डिक्टेव से एक गाड़ीवान ने आकर पूछा—"महाराज! एक गाँव से दूसरे गाँव गाड़ी हाँका करता हूँ, इस कारण प्रार्थना करने नियमित रूप से सिनेगॉग नहीं आ पाता। क्या मुझे यह पेशा छोड़ देना चाहिए?" धर्माचार्य रबी ने पूछा—"क्या कभी राह चलते गरीब-बूढ़े यात्रियों को मुफ्त में गाड़ी में सवारी देते हो?" गाड़ीवान ने कहा—"जी हाँ! अक्सर ऐसे मौके आते हैं।" तो रबी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"तब अपने पेशे में रहते हुए भगवान की सेवा करते रहो। वही तुम्हारी प्रार्थना व सच्ची साधना है।"

के विकास की जरूरत क्या है ? मनोकामना अपने आप पूरी हो जाएगी।

मित्रो! आप गलतफहमी में मत रहिए। मैं कहता हूँ कि आपके योगाभ्यास के लिए और आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपना घर और कुटुंब बेहतरीन जगह है। आप जो कमाते हैं, सांसारिकता की सामर्थ्य जो आपके भीतर है, वह चाहे अक्ल हो या पैसा हो, उसे समुन्नत बनाइए। कर्मठ बनाइए, स्वावलंबी बनाइए। एक और चीज आपके पास है। अगर आपके पास नीयत हो, आपके पास भावना हो, आपके पास चिंतन हो, आपके पास चरित्र हो, तो अपने लोगों को संस्कारवान बनाइए। अपने माध्यम से तो आप बनेंगे। हम रोटी खाते हैं, तो हाथ के माध्यम से ही तो खाते हैं। रोटी खाने के लिए हमको हाथ का सहारा लेना पड़ेगा, तभी पेट की भूख मिटेगी।

आप आत्मा की उन्नति अकेले नहीं कर सकेंगे। गुफा में एकांत कहीं बैठे रहेंगे। भाई साहब! ऐसा नहीं हो सकता। गुणों का विकास करने के लिए आप कोठरी में नहीं बैठ सकते। ध्यान के लिए कोठरी में बैठ सकते हैं, पर ध्यान से उद्देश्य कहाँ पूरा होगा ? ध्यान से आज तक किसी का कोई उद्देश्य कहाँ पूरा हुआ है ? जीवन के विकास से उद्देश्य पूरा हुआ है। जीवन के विकास के लिए सहायता की आवश्यकता होती है और साथियों की जरूरत होती है। जीवन समग्र है। जीवन एकाकी नहीं है। इसमें दांपत्य जीवन भी शामिल है। रोटी कमाना भी शामिल है। दवा-दारू भी शामिल है, किताब पढ़ना भी शामिल है। ये सब चीजें क्या आप अकेले कर सकते हैं ? सबका सहकार चाहिए। आपको अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक सहकारी क्षेत्र चुनना पड़ेगा। उसे चुनने के बाद आपको एक और काम करना पड़ेगा। वह यह कि आपको अपने घरवालों को संस्कारवान बनाना पड़ेगा, शिष्ट बनाना पड़ेगा, पुष्ट बनाना पड़ेगा, शालीन बनाना पड़ेगा। सदाचारी और उदार बनाना पड़ेगा, उदात्त बनाना पड़ेगा।

मित्रो! इसके लिए सबसे पहले आप अपने आप को अनुशासनप्रिय बनाइए, शिष्ट-सभ्य बनाइए, मितव्ययी बनाइए। वे सारे-के-सारे काम, जो आप अपने घर के लोगों को, परिवार के लोगों को अवगत कराना चाहते हैं, उनमें देखना चाहते हैं, उन सारे कामों को, गुणों को अपने जीवन में अभ्यास में ले आइए। वाणी पर नहीं, कथा में नहीं, बल्कि अपने दैनिक जीवन में अपनाइए। फिर देखिए, वे सब आपकी देखा-देखी आपका अनुकरण करेंगे और बाद में भी करेंगे। आपके बच्चों की ओर से मैं आपसे वायदा करता हूँ, आश्वस्त करता हूँ कि वे आपका कहना जरूर मानेंगे, लेकिन जो कहते हैं, वह आपके जीवन में, आचरण में घुला हुआ होना चाहिए। आपकी जीभ की बात कोई क्यों मानेगा ? आपके मुँह में जीभ है, जिससे आप उपदेश करते हैं, पर व्यवहार अलग तरह का करते हैं। सारी दुनिया के लोग इस जीभ से जिरह करते हैं। दुनिया को गुमराह करते हैं। इसी घिनौनी जीभ से आप अपने बच्चों को और अपने घरवालों को नसीहत दे रहे हैं। इस जीभ का कहना लोग मान लेंगे ? नहीं, कोई भी मानने वाला नहीं है। इसलिए

भगवान को अपना सब कुछ सौंप दिया जाए तो वे भक्त को कभी खाली नहीं रहने देते। सुदामा अपने गुरुकुल की बड़ी योजना लेकर कृष्ण के पास परामर्श के लिए गए, पर भेंट के लिए जो चावल की पोटली ले गए थे उसे बगल में ही दाबे रहे।

भगवान ने वह छीन ली और कहा—"जब तक अपना निजी वैभव मुझे सौंपेंगे नहीं, तब तक लेने के अधिकारी कैसे बनेंगे ?" कृष्ण ने सुदामा के चरण धोए और द्वारकापुरी को सुदामा नगरी में गुरुकुल की विशाल योजना के निमित्त हस्तांतरण कर दिया। भगवान इसी तरह पहले परीक्षा लेकर तब सुपात्र को निहाल करते हैं।

आपको एक ही काम करना पड़ेगा कि आपको अपना व्यक्तित्व, अपना स्वभाव, अपना गुण, अपना चिंतन इस तरीके से बनाना पड़ेगा कि चाहे आपकी बीबी हो, चाहे बच्चे हों, चाहे बहन हों, चाहे भाई हों, सबके सब उसी साँचे में ढलते हुए चले जाएँ।

व्यक्तित्व से रखें उदाहरण

मित्रो! राम का जीवन आपने देखा नहीं, राम जिस घर में आए थे, सारे-के-सारे विरोधी बदलते हुए चले गए। कैकेयी विरोधी थी न, मंथरा विरोधी थी न, लेकिन कैकेयी और मंथरा का आखिर में क्या हुआ? लक्ष्मण का क्या हुआ? सारे-का-सारा खानदान किस तरीके से बदलता हुआ चला गया। नसीहत दीजिए, उपदेश कीजिए, दूसरों को आप कुछ मत कहिए। इनको सिखाइए। गुरुजी! ये तो हमारा कहना नहीं मानते। आप का कहना मानेंगे। आप आशीर्वाद दे दीजिए कि हमारे बच्चे सुधर जाएँ।

हम कुछ नहीं कर सकते, आपको सुधारने पड़ेंगे। साहब! कोई तरीका बताइए। तरीका एक ही है कि आप जिसकी उम्मीद उनसे करना चाहते हैं, उसका नमूना स्वयं पेश कीजिए। आपका व्यवहार और आपका दृष्टिकोण, आपका चिंतन, आपका स्वभाव, आपका आचरण और आपका उदात्त व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि जिसे छूकर के सारे-के-सारे खानदान के लोग, सारे-के-सारे कुटुंबी, आपके मिलने वाले लोग, आपके मित्र—सबके सब उसी साँचे में ढलते हुए चले जाएँ।

मित्रो! मैं क्या कह रहा हूँ? आत्मसाधना की बात कह रहा हूँ। आप तो परिवार शिविर लगा रहे थे? हाँ भाई साहब! परिवार शिविर से मेरा मतलब यही था कि आप परिवार के माध्यम से, परिवार की सहायता से, परिवार के उपकरणों का उपयोग करते हुए स्वयं के उत्थान में लगे रहें और स्वयं को विकसित करें और स्वयं के साथ-साथ अपना दायरा बढ़ाएँ। 'स्व' को जैसे परिष्कृत किया जाता है, 'स्व' को जैसे श्रेष्ठ बनाया जाता है, उसी तरह से अपने कुटुंबियों को, मित्रों को, संबंधियों को, अपने हितैषियों को और अपने मुहल्लेवालों को, अपने समाजवालों को और अपने देशवालों को उसी स्तर का विकसित करते हुए चले जाएँ। यही मेरा मकसद था।

आपको विदा करता हूँ और आपके भीतर बीजारोपण करता हूँ। परिवार समाज की धुरी है। परिवार आपके जीवन की महत्त्वपूर्ण इकाई है। परिवार आपके बहिरंग और अंतरंग जीवन के बीच की संध्या है। यह प्रभातकाल है। परिवार को कम महत्त्व मत दीजिए। परिवार को सँभालिए, परिवार को सँजोइए। परिवार की जिम्मेदारियों को समझिए। जिम्मेदारियों को समझने और सँभालने के लिए पहले अपने आप को ढालिए। अपने आप को ढालना बड़ा काम है; क्योंकि आप परिवार के बड़े मेंबर हैं और जब आप अपने आप को ढाल लेंगे और विकसित कर लेंगे, तो फिर देखिए आपकी छाया, आपका वातावरण सारे-का-सारा कैसे परिष्कृत होता है?

मित्रो! चंदन का वृक्ष झुक करके अपनी समीपवर्ती झाड़ियों को खुशबूदार बना सकता है, तो आप भी चंदन के पेड़ के तरीके से अगर विकसित होंगे, श्रेष्ठ गुणों से युक्त होंगे, तो अपने कुटुंबियों को, अपने खानदान वालों को और अपने बीबी-बच्चों को उसी ढाँचे में, ढालने में समर्थ क्यों नहीं हो सकेंगे? गुरुजी! आप तो अध्यात्म की बात कह रहे थे, तो मैं आप से क्या कहूँ? अध्यात्म का प्रयोग करने के हजारों तरीके हैं। उनमें से सबसे सरल, सबसे बेहतरीन तरीका यह है—जिसको हम परिवार कहते हैं।

यह सर्वसुलभ तरीका है और सबके लिए है। मनोरंजक भी है। हँसते-हँसाते यह उपासना और साधना की जाने लायक भी है। इसलिए मैंने आपको परिवार की महत्ता के बारे में ध्यान दिलाया। मेरा स्वयं तो ध्यान है ही। मैं तो परिवार संस्था बनाता रहा हूँ और आपको परिवार-परिजन कह रहा हूँ। कुटुंब की भावना मेरे मन में हमेशा से छाई रही है। सारे विश्व को मैं अपना कुटुंब मानता हूँ, इसीलिए सारे विश्व की समस्याओं के बारे में, कष्ट-कठिनाइयों के बारे में उतनी ही फिक्र करता रहता हूँ, जैसे कि अपने शरीर के बारे में और अपने मन के बारे में। आप भी हमारे कुटुंबी हैं। आपके बारे में भी उतनी ही फिक्र करता हूँ, जितनी कि औरों के बारे में करता हूँ।

मित्रो! यही कारण है कि आपकी सेवा में और आपकी सहायता में, आपके दुःखों में और आपके दरद में और आपकी मुसीबतों में हम हमेशा सहायता करते रहे हैं और जब तक जिएँगे, तब तक सहायता करते रहेंगे। आप हमको वरदान दीजिए। वह तो हम देंगे ही। आपकी सेवा करेंगे ही; क्योंकि हम आपके कुटुंबी हैं। हम आपके पिता हैं। हमारा बच्चा बीमार होगा, तो हम किस तरीके से देखेंगे? बच्चा गलती करेगा, तो हम कैसे देखते रहेंगे। आप में से कोई भी

आदमी दुःख में होगा, परेशानी में होगा, कष्ट में होगा, पीड़ा में होगा, तो हम संत होने के नाते नहीं, वरन कुटुंब के बुजुर्ग होने के नाते आपके साथ चलेंगे। आपने वरदान माँगा हो तो, न माँगा हो तो, आप आशीर्वाद चाहो या न चाहो। आप अपनी परेशानियाँ, हैरानियाँ लेकर के आए हैं। आपने ये कही हों या न कही हों। आपके कहने की जरूरत क्या है? लड़की उन्नीस साल की हो गई है। पिताजी! हमारा विवाह करा दीजिए। नहीं बेटी, कहने की क्या जरूरत है? हमको दिखाई पड़ता है कि तुम उन्नीस साल की हो गई हो। हम अपनी जिम्मेदारी कहीं से भी पूरी करेंगे। तुम्हारा कहना जरूरी नहीं है कि पिताजी! हम बड़े हो गए, अब हमारा भी ब्याह-शादी कर दीजिए। हाँ, बेटे! हम तुम्हारा भी ब्याह करेंगे।

मित्रो! आपकी पत्नी तीन दिन से बुखार में पड़ी है। हमारा इलाज कराइए, कहने की क्या जरूरत है? हमको पहले से ही मालूम था कि आप बीमार हैं। आपकी हम सेवा करेंगे। जो आदमी समझदार होते हैं, वे कहे बिना भी जान सकते हैं। जिनके अंदर कौटुंबिकता के सिद्धांत कूट-कूटकर भरे हैं, वे सबकी सेवा और सहायता भी कर सकते हैं। आपके और हमारे भी कौटुंबिकता के सिद्धांत हैं, इसीलिए हम आपकी सेवा-सहायता करेंगे। आप इसको वरदान मानें तो मानते रहें। एहसान मानें तो मानते रहें। आशीर्वाद मानें तो मानते रहें। चमत्कार मानें तो मानते रहें। सिद्धि मानें तो मानते रहें, पर यह सिद्धि नहीं है। क्या है?

यह हमारी कौटुंबिकता, हमारी पारिवारिकता है, जिसको हमने विकसित किया है और आगे बढ़ाया है, ऊँचा उठाया है। स्वयं को इस लायक बनाया है कि हम आपकी सहायता कर सकें और दुनिया की सहायता करने में समर्थ हो सकें। यही हैं मोटे-मोटे सिद्धांत, जो आपके सामने पेश किए। अब आपको विदा करते हैं। आप इन सिद्धांतों को समझना और यदि संभव हो सके, तो आप अपने जीवन में भी उतार लेना। उतारने के लिए साहस करना, तो आप पाएँगे कि आपका परिवार आपके लिए कल्पवृक्ष के तरीके से कैसे सुख और शांतिदायक बन जाता है।

आज की बात समाप्त।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥
॥ ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः॥

❑

व्यक्ति-व्यक्ति की भावनाओं में अंतर से परिणति भी भिन्न-भिन्न होती है। एक पुरोहित को देवालय के समीप यज्ञ करते देखकर उधर से गुजरते हुए राजकुमार ने यज्ञ का कारण पूछा। पुरोहित ने कहा कि वह बिल्वपत्रों से हवन कर रहे हैं। तीन वर्ष हो गए, पर पाँच सोने के बिल्वफल पाने का और दरिद्रता मिटाने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ।

राजकुमार ने पुरोहित से उनका आसन माँग लिया और उसी विधि से यज्ञ में आहुतियाँ डालने लगे, पर उनकी भावना में अंतर था। उन्होंने क्रिया-कृत्य में समूची श्रद्धा का समावेश किया और संकल्प किया कि जो भी प्रतिफल मिलेगा, उसे लोक-कल्याण में लगा देंगे। दूसरे दिन यज्ञकुंड में से सोने के पाँच बिल्वफल निकले और राजा की झोली में जा बैठे। यह देख पुरोहित को आश्चर्य हुआ। पुरोहित के आश्चर्य का समाधान करते हुए राजकुमार ने कहा—"देवता मात्र कृत्य को ही महत्त्व नहीं देते, कर्त्ता की भावना को भी परखते हैं।"

विश्वविद्यालय परिसर से—175

श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ विज्ञान के विधान

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के परिसर में इस बार शारदीय नवरात्र के अवसर पर श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या ने अपने संध्याकालीन उद्बोधन में जिस विषय पर गहन रूप से प्रकाश डाला, वह था— श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ विज्ञान के विधान। नवरात्र के इन नौ दिनों में गीता के चतुर्थ अध्याय में वर्णित यज्ञ संबंधी इन श्लोकों के गहन व सूक्ष्म अर्थों से विद्यार्थीगण अवगत हुए। यज्ञ विज्ञान के विधान से संबंधित जो वचन श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने प्रस्तुत किए, उनका आरंभ हुआ इस श्लोक से—

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

—गीता, 4/23

यज्ञ के विज्ञान-विधान की प्रक्रिया के पहले क्रम में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया कि यज्ञ करने वाले मनुष्य का आचरण कैसा होता है? उन्होंने कहा कि ऐसा व्यक्ति आसक्ति से रहित होगा, उसकी चेतना ज्ञान में अवस्थित होगी और उसके प्रत्येक आचरण में यज्ञ होगा और इसका परिणाम होगा कि वह कर्मबंधन से मुक्त होगा।

यज्ञ का वास्तविक स्वरूप क्या है? इसके बारे में यज्ञ विज्ञान-विधान के दूसरे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

—गीता, 4/24

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इसमें अर्पण की प्रक्रिया ब्रह्म है, हवि यानी हवन किए जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है, इसमें अग्नि ब्रह्म है, हवन करने वाला ब्रह्म है और ये समस्त कर्म ब्रह्ममय हैं और ब्रह्मकर्म में स्थित होने वाले यज्ञकर्त्ता के द्वारा जो फल प्राप्त किया जाता है, वह भी ब्रह्म है।

यज्ञ का आचरण और यज्ञीय जीवन का मुख्य आधार है—आसक्ति और अहंकार न हो, प्रत्येक आचरण में यज्ञ हो, यह ब्रह्म अन्यत्र कहीं नहीं है, ये समष्टि ही ब्रह्म है और इसका अनुभव जो करता है, वह कर्मबंधन से मुक्ति की ओर आगे बढ़ता है।

यज्ञ विज्ञान-विधान के तृतीय चरण में भगवान श्रीकृष्ण ने यज्ञ का स्वरूप बताया है—

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥

—गीता, 4/25

जो योगीजन देवताओं का पूजन यानी देवपूजन का यज्ञ करते हैं और अन्य योगीजन परमब्रह्म परमात्मा रूप अग्नि में अभेददर्शनरूप यज्ञ में हवन करते हैं, वो इस यज्ञ के द्वारा ही आत्मरूप यज्ञ का हवन करते हैं। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि एक यज्ञ प्रकृति में होता है—कर्म यज्ञ और एक यज्ञ होता है— अभेददर्शनरूप यज्ञ, यह ज्ञानयज्ञ है, जो परमात्मा के साथ मिल करके ही घटित होता है। इसके लिए क्या करना चाहिए?

इस बारे में यज्ञ विज्ञान-विधान के चौथे चरण में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥

—गीता, 4/26

अर्थात संयम की अग्नि में इंद्रियों की समिधाओं का हवन करो और जब इंद्रियों की समिधाएँ स्वयं अग्निरूप हो जाएँ, पवित्र हो जाएँ, तो उसमें विषयों का हवन करो। यह संपूर्ण प्रक्रिया हमें स्वार्थ और अहंकार से मुक्त करके पवित्रता की ओर ले जाती है।

इसके अगले चरण के श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥

—गीता, 4/27

हम सभी कर्म ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों द्वारा करते हैं, लेकिन भगवान यहाँ पर कर्म का एक नया आयाम बताते हैं

कि हम प्राणों के द्वारा भी कर्म करते हैं; क्योंकि प्राणों की ऊर्जा के बिना कर्म का निष्पादन संभव नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इंद्रियों के द्वारा जो कर्म हो रहे हैं और प्राणों के द्वारा जो कर्म हो रहे हैं, उन समस्त कर्मों को आत्मसंयम रूप योगाग्नि में हवन करो। इससे जो इंद्रियों के द्वारा कर्म हो रहे हों या प्राणों के द्वारा कर्म हो रहे हों, वे समस्त कर्म शुद्ध व शुभ होंगे, यह सुनिश्चित है। कर्म शुभ होते हैं, जब वे लोकहित के लिए किए जाते हैं, सर्वहित के लिए किए जाते हैं और कर्म शुद्ध तब होते हैं, जब वो अहंकार से मुक्त हो करके किए जाते हैं। शुभ और शुद्ध कर्मों का जो आत्मसंयमरूपी योगाग्नि में हवन करता है, उसमें ज्ञान प्रकाशित होता है।

फिर यज्ञ विज्ञान-विधान के छठवें चरण में भगवान श्रीकृष्ण यज्ञों का प्रकार बताते हैं, वे कहते हैं—

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥

—गीता, 4/28

अर्थात द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ—ये यज्ञ के प्रकार हैं और इन सभी यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले साधक तीक्ष्ण व्रतों से युक्त होते हैं, प्रयत्न करने वाले होते हैं।

फिर यज्ञ के सातवें चरण में यज्ञ की पूरी प्रक्रिया बता करके प्राणों के परिष्कार को बताते हुए कहते हैं—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

—गीता, 4/29

अपान में प्राणों का हवन और फिर प्राणों में अपान का हवन हो, फिर प्राण और अपान का संयम यानी प्राण और अपान का समन्वय हो, ऐसा होने पर योगी प्राणायामपरायण होता है।

इसके आठवें चरण में वे कहते हैं—

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥

—गीता, 4/30

आहार-विहार का संयम करने वाले, शुद्ध आचरण से युक्त, शुद्ध भोजन से युक्त, जो प्राणों में ही प्राणों का हवन करते हैं—ऐसे जो यज्ञ करने वाले हैं, वे यज्ञ के प्रकारों में से चाहे कोई भी यज्ञ कर रहे हों, फिर भी वे सभी प्रकार के यज्ञों का मर्म जानने वाले हैं और वे यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा अपने पापों का, अपने दूषित कर्मों का नाश करते हैं; क्योंकि कर्म दूषित नहीं रहने चाहिए और कर्मबंधन में बँधने वाले कर्म नहीं होने चाहिए।

इस पूरी प्रक्रिया के आठ श्लोकों के बाद भगवान श्रीकृष्ण नवें चरण में अब नवें श्लोक का मर्म समझाते हुए कहते हैं कि—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥

—गीता, 4/31

जिसने भी यज्ञ के बचे हुए अवशिष्ट का अनुभव किया, यज्ञ के बचे हुए पदार्थ का अनुभव किया, वो अनुभव किया जो 'इदं न मम' के बाद बचता है, स्वार्थ और अहंकार की आहुति के बाद बचता है, वो यज्ञ का अवशिष्टरूपी अमृत अनुभव करता है। अर्थात जिसने अपने कर्म को, जिसने अपने भाव को, जिसने अपने विचारों को, जिसने अपने शरीर को, जिसने अपनी इंद्रियों को, जिसने अपने प्राणों को यज्ञ के द्वारा शुद्ध कर लिया है; उसे ही यज्ञ का अवशिष्टरूपी अमृत मिलेगा यानी परमात्मा का सान्निध्य मिलेगा।

पहले श्लोक का भगवान ने सार दिया कि यज्ञ का स्वरूप क्या है, परब्रह्म परमात्मा के अलावा यह यज्ञ और कुछ भी नहीं है, लेकिन यह अनुभव जो होता है, यह स्वार्थ और अहंकार के साथ नहीं होता, यह यज्ञीय आचरण के साथ होता है, जिसमें आसक्ति नहीं ज्ञान अवस्थित है। फिर श्रीभगवान ने कहा कि यज्ञ के प्रकार में यज्ञ का हवनकुंड कहीं भी जले, यज्ञ की आहुतियाँ कहीं भी दी जाएँ, लेकिन यज्ञ की प्रक्रिया हमारे संपूर्ण आंतरिक व बाह्य जीवन में विस्तारित होनी चाहिए। यज्ञ की अग्नि में सभी को पवित्र होना चाहिए, इंद्रियों को भी और विषयों को भी।

फिर उन्होंने कहा कि कोई कुछ भी कर्म करे, प्रत्येक कर्म—चाहे वो इंद्रियों के द्वारा किए जाने वाले हों या प्राणों के द्वारा, लेकिन वो शुद्ध और शुभ ही होने चाहिए। यज्ञ का स्वरूप कोई भी हो, लेकिन यज्ञ का आचरण जो कर रहा है, उसे प्रयत्न करने वाला और तीक्ष्ण व्रतों से युक्त होना चाहिए, उसमें संयम और सदाचार होना चाहिए। संयम, सदाचार और अनासक्ति के बिना कोई यज्ञ नहीं होता है। केवल स्वाहा कर देने मात्र से यज्ञ संपन्न नहीं होता है।

फिर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि ध्यान रहे, हमारे प्राणों का प्रत्येक कोना, हमारे अस्तित्व का प्रत्येक कोना शुद्ध हो जाना चाहिए, हमारी वासनाओं को शुद्ध होना चाहिए, हमारी भावनाओं को शुद्ध होना चाहिए और हमारी शुद्धतम भावनाओं को फिर ऊर्ध्व होना चाहिए, उन्हें अधोगामी नहीं होना चाहिए। हमारी कुंडलिनी शक्ति ऊर्ध्वगामी हो और वो स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और आज्ञाचक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार की ओर जा रही हो।

ऐसा यज्ञीय जीवन जिसमें केवल शुभ है, जिसमें केवल शुद्ध है, इसका जो अनुभव होगा, हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व का जो अनुभव होगा, इसमें फिर मेरा होने की, मैं की कामना न रहेगी। जहाँ मैं और मेरा न होगा, तू और तेरा न होगा, वह अभेदरूपदर्शन होगा, कहते हैं कि यज्ञ का अवशिष्ट जो होगा, यह अनुभव अद्भुत होगा।

इस अनुभव में कण-कण में रोम-रोम में पवित्रता होगी, इस पवित्रता के प्रकाश में ही परमात्मा का अनुभव होगा—**यान्ति ब्रह्म सनातनम्**। हम जो निरंतर एक के बाद एक अपने अस्तित्व के प्रत्येक आयाम को यज्ञ के द्वारा पवित्र बनाते चलते हैं, उस अनुभूति में केवल सनातन ब्रह्म होगा। केवल शुद्ध सनातन ब्रह्म होगा।

इसमें ध्यान देने की बात है कि यज्ञकर्त्ता, यज्ञ की प्रक्रिया और यज्ञ का फल परमात्मा के सिवाय और कुछ नहीं है, यह हमें अनुभव नहीं हो पाता है और अनुभव इसलिए नहीं हो पाता है; क्योंकि कहीं-न-कहीं कोई खोट हमारे अंदर बाकी है, कहीं-न-कहीं कोई अपवित्रता बाकी है और यह अपवित्रता क्या है?

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, जिसमें यज्ञीय आचरण का अभाव है, वही व्यक्ति अपवित्र है। ब्राह्मण पवित्र नहीं होता है, और शूद्र अपवित्र नहीं होता है। अपवित्रता छुआछूत नहीं है, अपवित्रता जात-पाँत की नहीं है, अपवित्रता कुल की नहीं है, ब्राह्मण या शूद्र होने की नहीं है, ऊँच-नीच की अपवित्रता नहीं है, अगर कहीं हम अपवित्र होते हैं, कहीं हमारे अंदर कोई कुटिलता बचती है, कहीं हमारे अंदर कोई अपवित्रता बचती है, तो वह अपवित्रता आसक्ति की होगी, वो अपवित्रता अहं की होगी।

हम बहुत दिनों तक इस भ्रांति में रहे कि जो जाति से नीचा है, वही नीचा है, जो जाति से साधारण है, जो नीची जाति का है, जो शूद्र है, वही अछूत है। भगवान कहते हैं कि ऐसा नहीं है। जाति से कोई हीन नहीं होता, अहंकार से हीन होता है। जिसमें अहंकार की ग्रंथि जितनी जटिल है, वही व्यक्ति अपवित्र है, जिसमें आसक्ति जितनी गहरी है, वही व्यक्ति अपवित्र है।

ब्रह्म का अनुभव बुद्धि से नहीं होता है, विचार से नहीं होता है, भगवान कहते हैं कि ब्रह्म का अनुभव तो यज्ञीय आचरण का फल है, यज्ञ की प्रक्रिया का परिणाम है, आसक्ति और अहंकार के संपूर्ण दहन और भस्म होने का परिणाम है। बुद्धि के वाद-विवाद से, शास्त्रों के रटन से इस ब्रह्म का अनुभव नहीं होता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—**यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्**। जिसने यज्ञ के अवशिष्ट का अनुभव किया, जिसने यज्ञ के अवशिष्ट का पान किया, वही सनातन ब्रह्म को अनुभव कर सका। पवित्रता का चरम वहाँ है, जहाँ यज्ञ का चरम है। जहाँ अस्तित्व का प्रत्येक कोना, अस्तित्व का प्रत्येक बिंदु पवित्र हो चुका है, वहीं ब्रह्म का अनुभव है, वाद-विवाद में नहीं। अग्नि की उपस्थिति जहाँ संपूर्ण रूप से व्याप्त हो चुकी है, यज्ञ की अग्नि जहाँ संपूर्ण रूप से प्रदीप्त है, वहीं ब्रह्म का अनुभव है।

जो समष्टि का अनुभव करता है, वही यज्ञ करता है। जो संवेदना का अनुभव करता है, वही यज्ञ करता है। जो भेद समझता है, वो यज्ञ को नहीं समझता है। जो अभेद समझता है, वही यज्ञ करता है। यज्ञ का कुंड एक स्थान पर जलता है, लेकिन उसमें जो आहुतियाँ डाली जाती हैं और जो धूम्र वायु में विस्तारित होता है— वो सब जगह पहुँचता है, यही तो यज्ञ की संवेदना है। सर्वत्र सब जगह, मैं तो सबसे बाद में आता है। यह मेरे लिए नहीं है, सबके लिए है। जो लोकहित को साधता है, वही यज्ञ को प्रतिष्ठित करता है। ऐसे ही यज्ञ प्रतिष्ठित नहीं होता है, यों ही यज्ञ नहीं होता है।

यज्ञ को समझना है, उसकी प्रक्रिया को समझना है, उसके विधान को समझना है, तो एक बात समझनी आवश्यक होगी कि आसक्ति को विसर्जित करना होगा, आसक्ति की आहुति देनी होगी, अहंकार की आहुति देनी होगी, तभी यह यज्ञ की प्रक्रिया हमको ब्रह्म का अनुभव दे पाएगी, तभी हमको यह ज्ञान के—बोध के शिखर पर पहुँचा पाएगी, फिर हमने आहुतियाँ कितनी डालीं या न डालीं, लेकिन अस्तित्व में हवनकुंड जरूर जलना चाहिए। ❑

अपनों से अपनी बात

मनुष्य का भावनात्मक निर्माण है हमारा उद्देश्य

वर्तमान समय जिसमें जीवन लेने का सौभाग्य हम गायत्री परिजनों को प्राप्त हुआ है—इसे ऐतिहासिक, विलक्षण और अभूतपूर्व ही कहा जा सकता है। यों दृश्य आँखों से इन घड़ियों में ऐसा कुछ घटता प्रतीत नहीं होता, जो हमें अपनी कार्ययोजना पर पुनर्विचार करने के लिए विवश कर दे, परंतु परोक्ष जगत में इन दिनों एक ऐसे युग के निर्माण की पटकथा लिखी जा रही है, जिसे हर दृष्टि से स्वर्गीय, मंगलकारी व शुभ ही कहा जा सकता है। आज का मनुष्य—अपनी नीतियों, मर्यादाओं और मूल्यों को दरकिनार कर, जिस सामूहिक आत्महत्या के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है उस भयावह संकट से मानवता को उबारकर, दिव्यशक्तियाँ एक सुखद सूर्योदय की प्रस्तावना लिख रही हैं और उन अतिमानवीय प्रयासों को अभूतपूर्व कहने में किसी को संकोच नहीं होना चाहिए।

जिस तरह नई आत्मा को जीवन मिलने में परिवार की प्रसन्नता व माँ की प्रसव-पीड़ा, दोनों समाहित होते हैं। उसी तरह वर्तमान समय में सुखद भविष्य की आतुरता व गुजरते अतीत की उद्विग्नता दोनों समायोजित हैं। जैसे बुझने से पहले दीपक की लौ फड़फड़ाकर जल उठती है, प्राण जाने से पहले मनुष्य की श्वास-गति असामान्य रूप से तीव्र हो जाती है, सवेरा होने से पहले का प्रहर सर्वाधिक तमस् को लिए हुए होता है, वैसे ही इन दिनों विश्व के वातावरण पर संव्याप्त दुर्बुद्धि, दुर्भावनाओं व दुष्कर्मों के नकारात्मक साम्राज्य ने अपने कुटिल प्रयासों में तीव्रता ला दी है। हिंसा, बलात्कार, अपराध, युद्ध, आतंकवाद, अलगाव, न जाने ऐसे कितने अंधकारपूर्ण सामाजिक घटनाक्रम हैं, जो पहले की तुलना में और तीव्र हो गए प्रतीत होते हैं। तथापि इसमें संदेह, शंका की कोई गुंजाइश नहीं कि भविष्य स्वर्णिम है, उज्ज्वल है व प्रकाशित है।

ऐसे समयों में जिन्हें संधिकाल कहना उचित होगा, हमें ज्यादा सतर्कता, सूझ-बूझ व सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। सतर्कता न बरतने पर परिणाम भयावह भी हो सकते हैं और उनका खामियाजा असंख्य पीढ़ियों को निरर्थक भुगतना पड़ सकता है। आज प्रस्तुत समस्याओं में सर्वाधिक विषम समस्या मनुष्य की आस्थाओं का विकृत हो जाना है।

तात्कालिक परिणामों को पाने की होड़ में मिली उपलब्धियों ने मानव की नीतिगत मान्यताओं को सिरे से दूषित कर दिया है। आज का मनुष्य न प्रकृति के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझता है और न परमात्मा के, और इस स्वच्छंदता, उच्छृंखलता व उद्दंडता के दुष्परिणाम भटकते मनुष्यों, टूटते परिवारों, बिखरते समाजों, क्रोधित प्रकृति, उद्देश्यविहीन मानव समुदाय के रूप में हमें देखने को मिलते हैं। यदि मानवीय प्रकृति किसी के प्रति जिम्मेदार नहीं है तो उसे पाशविकता के गर्त में गिरने से कौन रोक सकता है और ऐसी स्थिति में क्लेश-कलह, अपराध, हिंसा, द्वेष-वैमनस्य, रोग-शोक—इनका बढ़ना स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। यदि सुखद भविष्य की संभावनाओं को साकार करना है तो वर्तमान समय में सतर्कता की अत्यंत आवश्यकता है।

वर्तमान समय में विशेष सतर्कता बरतने पर जोर देने के पीछे का उद्देश्य मनुष्य की तकनीकी पर बढ़ती अत्यधिक निर्भरता भी है। स्मार्ट फोन, कंप्यूटर, इंटरनेट के पीछे बढ़ती दीवानगी किसी दिन मनुष्य को मशीन ही न बना दे, ऐसा प्रतीत होता है। इन सब आविष्कारों ने जहाँ मनुष्य को सुविधाजनक जीवन दिया है तो वहीं अधीरता, शंका, वैमनस्य जैसे संताप भी उपहार में दिए हैं। फिर तकनीकी विकास से उपजे संहारक हथियारों का जखीरा एक अलग चुनौती का विषय है। यदि यह परमाणुशक्ति किसी सनकी दिमाग के आतंकवादी के हाथ लग जाए तो लाखों वर्ष पुरानी इस मानवीय सभ्यता को धूल फाँकते देर नहीं लगने वाली है।

दिखने में सुरसा के मुख की तरह अनंत लगने वाली इन समस्याओं का विस्तार चाहे कितना भी हो—कारण मूल रूप से मानवीय भावनाओं में आई निकृष्टता ही है और इसी को ध्यान में रखकर इस युग निर्माण योजना के सूत्रसंचालक

एवं अपने इस मिशन के मार्गदर्शक, संरक्षक परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी ने गायत्री परिवार का मूल उद्देश्य मनुष्य का भावनात्मक नवनिर्माण बताया है। इन पंक्तियों में जिस क्षेत्र में, जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर जिस सतर्कता की बात की जा रही है, उसका केंद्रबिंदु मनुष्य का भावनात्मक नवनिर्माण ही है।

अपना यह गायत्री परिवार छोटा ही सही, परंतु जाग्रत, जीवंत, प्राणवान, संस्कारवान आत्माओं का समुच्चय है और संख्या कम हो, परंतु प्रयत्नों में निरंतरता हो तो सफलता असंदिग्ध हो जाती है। छोटे-छोटे कदम चलकर कछुए की खरगोश से दौड़ जीत लेने की कथा सर्वविदित है। बूँद-बूँद से तालाब भर जाता है, ईंटों से जुड़ जाने से इमारत खड़ी हो जाती है तो क्या यह संभव नहीं है कि अनेक प्राणवान आत्माएँ मिलकर इस महान पुरुषार्थ को अंजाम दे सकें। अनेक देवशक्तियों की समन्वित शक्ति ही माँ दुर्गा बनकर उभरी तो गायत्री परिजनों की सामूहिक प्राणशक्ति किसी भी असंभव को संभव कर दिखाने का दुष्कर प्रयास कर ही सकती है। गायत्री परिवार के निर्माण में ऐसी ही संकल्पवान विभूतियों का पुण्य-तप-प्राण लगा है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि ये सृजन सेनानी समय आने पर युग के प्रवाह को बदल पाने में सक्षम होंगे।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में आगामी भविष्य की रूपरेखा कुछ इस प्रकार होगी—'आगामी भविष्य में एक विश्व, एक राष्ट्र, एक धर्म, एक संस्कृति, एक नीति, एक परंपरा, एक अर्थतंत्र एवं सर्वांगीण एकता के आधार पर व्यक्ति का मनोस्तर और समाज का ढाँचा नए सिरे से खड़ा किया जाएगा। आज की सड़ी-गली संकीर्णताएँ अपनी अनुपयोगिता के कारण अपनी मौत मर जाएँगी। जिस वैयक्तिक अनाचार और सामाजिक भ्रष्टाचार का सर्वत्र बोलबाला है, कल उनके लिए कोई आधार शेष न रह जाएगा।' यह भविष्य सुनिश्चित रूप से मानवता को धन्य करने वाला है, परंतु इसके साथ ही यह भी सचाई है कि इस कार्य को परिणति तक पहुँचाने के लिए गायत्री परिवार की प्रबुद्ध आत्माओं को प्रेरणास्पद भूमिकाओं का निर्वहन करना होगा।

इसमें यों तो करने को बहुत से कार्य हैं, परंतु प्रमुख रूप से प्रत्येक गायत्री परिवार को अपने अंत:करण में पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्देशों के प्रति सर्वस्व समर्पण की भावना जगानी होगी। इस भाव को अंतरात्मा में उभारना होगा कि मानवीय जीवन के रूप में हमारा उद्देश्य मात्र पेट भरने व परिवार बड़ा करने तक सीमित नहीं हो सकता। समाज को सही दिशा दिखाने के लिए हमें अपने जीवन से, चिंतन से, आचरण से वो उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे, जिन्हें देख-सुनकर प्रत्येक के मन में कुछ वैसा कर गुजरने का दुस्साहस जाग उठे।

इस हेतु अवसरों की कमी हममें से किसी के भी जीवन में नहीं है। प्रत्येक परिजन के हाथ में यह सुअवसर है कि वह अपने सामान्य जीवनक्रम में असाधारण पुरुषार्थ कर सकता है। गायत्री परिवार का प्रत्येक परिजन देवात्मा है, वह सामान्य-साधारण तरीके से अपनी गुजर-बसर कर भी नहीं सकता और उसे करना भी नहीं चाहिए। उसे अपनी चेतना में उतर व उभर रही महाकाल की पुकार सुननी चाहिए और उस पर अमल करने के लिए सजग-समर्थ हो जाना चाहिए। सोचने पर लग सकता है कि ऐसे कदम उठाने पर परिवार के भरण-पोषण की व्यवस्था कैसे बन पड़ेगी? तो उस दायित्व का भार परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी पर छोड़कर निश्चिंत हो जाना चाहिए, जो समस्त विश्व के हजारों वर्षों के भविष्य की व्यवस्था बनाने में संलग्न हैं, क्या वे अपने प्यारे बच्चों के जीवन में तात्कालिक व्यवस्था न बना सकेंगे?

अब रुकने, ठहरने व सोचने का समय नहीं है। परिवर्तन का शंखनाद करने के लिए जिन प्रबुद्ध आत्माओं को जाग्रत करने की आवश्यकता थी, वे सभी गायत्री परिवार की सदस्य हैं। उन्हें नवनिर्माण के इस दायित्व को पूरा करने के लिए तुरंत ही जुट जाना चाहिए। विश्व को बदलने का संकल्प, स्वयं को बदलने से ही पूरा हो सकेगा। हम बदलेंगे तो युग बदलेगा—हम सुधरेंगे तो युग सुधरेगा। प्रकाश हमारे भीतर पैदा होगा तो सर्वत्र फैलेगा। परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी ने युग-परिवर्तन का सूत्रपात इसी सोच के साथ किया था। उसी परंपरा का निर्वहन करना उसके उत्तराधिकारी के रूप में हमारा कर्त्तव्य भी है।

हमें अपनी दिव्य विरासत को अनुभव करना चाहिए, अपना स्वरूप याद रखना चाहिए और इस संक्रांति काल में उस महत् कार्य के संपादन में जुट जाना चाहिए, जो सही है,

उचित है व अभीष्ट है। इसके लिए पूज्य गुरुदेव के विचारों को अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचाने की आवश्यकता है, ताकि युग-परिवर्तन की सुनिश्चित संभावनाओं को शीघ्रता से व समग्रता से पूरा किया जा सके।

यह नववर्ष पर्व हमारे अंतर्मनों में परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी के लिए यही श्रद्धा-संवेदना जगाकर जाए, तो इससे श्रेष्ठ व अनुपम गुरुदक्षिणा और कुछ हो नहीं सकती। ❑

एक तांत्रिक ने आकाश से स्वर्णवर्षा कराने की सिद्धि प्राप्त कर ली थी और अपने परम प्रिय शिष्य को भी सिखा दी, पर वर्ष में एक बार जब अमुक नक्षत्र उदय होता था, तभी वह प्रयोग हो सकता था। एक दिन दोनों कहीं यात्रा पर जा रहे थे कि रास्ते में चोर मिले। उन्होंने दोनों को पकड़ लिया। तांत्रिक को छोड़ दिया कि कहीं से हजार मुद्रा संग्रह करके लावे, तब उस युवक को छोड़ा जाएगा। गुरु ने शिष्य से धीरे से कहा—"तुम घबराना मत। जल्दी ही नक्षत्र आने वाला है सो मैं माँगा धन लेकर आ जाऊँगा, पर तुम इसका प्रयोग जल्दबाजी में न कर बैठना, नहीं तो जान से भी हाथ धो बैठोगे।"

दूसरे दिन ही वह नक्षत्र उदय हो गया। युवक धैर्य और विश्वास खो बैठा। उसने चोरों से कहा—"मुझे खोल दो। मैं अभी मंत्र द्वारा स्वर्णमुद्रा वर्षा दूँगा। कुछ तुम ले लेना, कुछ मुझे दे देना।" चोर सहमत हो गए। उसे खोल दिया। युवक ने प्रयोग किया और सोना बरसने लगा। उन सबको लेकर चोर चल दिए। रास्ते में उन चोरों का एक और बड़ा दुर्दांत दल आया। उसने सोना देखा तो छीनने पर उतारू हो गए। पिछले चोरों ने सब बात बता दी और उस युवक से सोना बरसाने को कहा। चोरों ने युवक को पकड़ा, पर नक्षत्र निकल चुका था वह वर्षा न करा सका सो उसे दुराव करने वाला कहकर मार डाला। अब चोरों के दोनों दलों में लड़ाई होने लगी। उस लड़ाई में एक-एक आदमी, दोनों दलों के बचे। शेष सब मारे गए। दोनों ने निश्चय किया, दिन में विश्राम कर लें। रात को चलेंगे। बात तय हुई। दोनों एक-एक गाँव से भोजन और शराब लेने गए। दोनों अपने सामान में जहर मिला लाए और उसे खाने-पीने पर दोनों मर गए। बूढ़ा तांत्रिक हजार रुपया लेकर वापस लौटा तो देखा सभी मरे पड़े हैं। वह उस धन को छोड़कर खाली हाथ भागा कि मुफ्त का धन कहीं इन्हीं लोगों की तरह मेरे भी प्राणहरण न कर ले।

वास्तव में अहंताजन्य वित्तैषणा से जो दुर्गति इन सभी की हुई, उसे समझदार मनुष्य भली भाँति समझते हैं व परिश्रम की कमाई को ही महत्त्व देते हैं।

जन्मदिवस गुरु का आध्यात्मिक सारे जग को भावै है।
वासंती बयार सखी री मन मोरा हुलसावै है॥ 1॥
पतझड़ के तरुवर में फिर से नव किसलय बौराए हैं,
हरियायी डारी पर भौंरा गीत मिलन के गाए हैं,
उजड़े वन में पर्व वसंत वहार मनोरम लावै है।
वासंती बयार सखी री मन मोरा हुलसावै है॥ 2॥
पंचम तिथि वसंत के दिन माँ सरस्वती अवतरित हुई,
मनुजों के समेत जग जीवों की वाणी प्रस्फुटित हुई,
चरणों में माँ सरस्वती के श्रद्धा शीश झुकावै है।
वासंती बयार सखी री मन मोरा हुलसावै है॥ 3॥
दिया बोध था पूज्यश्री को इस दिन ही दादा गुरु ने,
गुरु अनुशासन को जीवन से बाँध लिया था ऋषिवर ने,
प्रथम मिलन सद्गुरु का जग के भाग्यविधान रचावै है।
वासंती बयार सखी री मन मोरा हुलसावै है॥ 4॥
देव संस्कृति स्थापन हो रहा आज संसार है,
ध्वंसों में नवसृजन हेतु युगनिर्माणी तैयार है,
युवाओं में भरी चेतना ऊर्जा नई जगावै है।
वासंती बयार सखी री मन मोरा हुलसावै है॥ 5॥
हर युग की है अलग समस्या समाधान भी न्यारे हैं,
नवयुग का निर्माण आज मानव सद्बुद्धि सहारे है,
महाकाल हमको अब जग में फिर आवाज लगावै है।
वासंती बयार सखी री मन मोरा हुलसावै है॥ 6॥

—शोभाराम शशांक

श्रद्धेय डॉ. साहब एवं श्रद्धेया जीजी द्वारा गायत्री तपोभूमि मथुरा में मंदिर परिसर के नवीकरण कार्य का विधिवत् शुभारंभ

प्रौद्योगिकी प्रबंधन संस्थान–मसूरी में आयोजित नव नियुक्त निदेशकों की कार्यशाला में श्रद्धेय कुलाधिपति का उद्बोधन

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-12-2019
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020
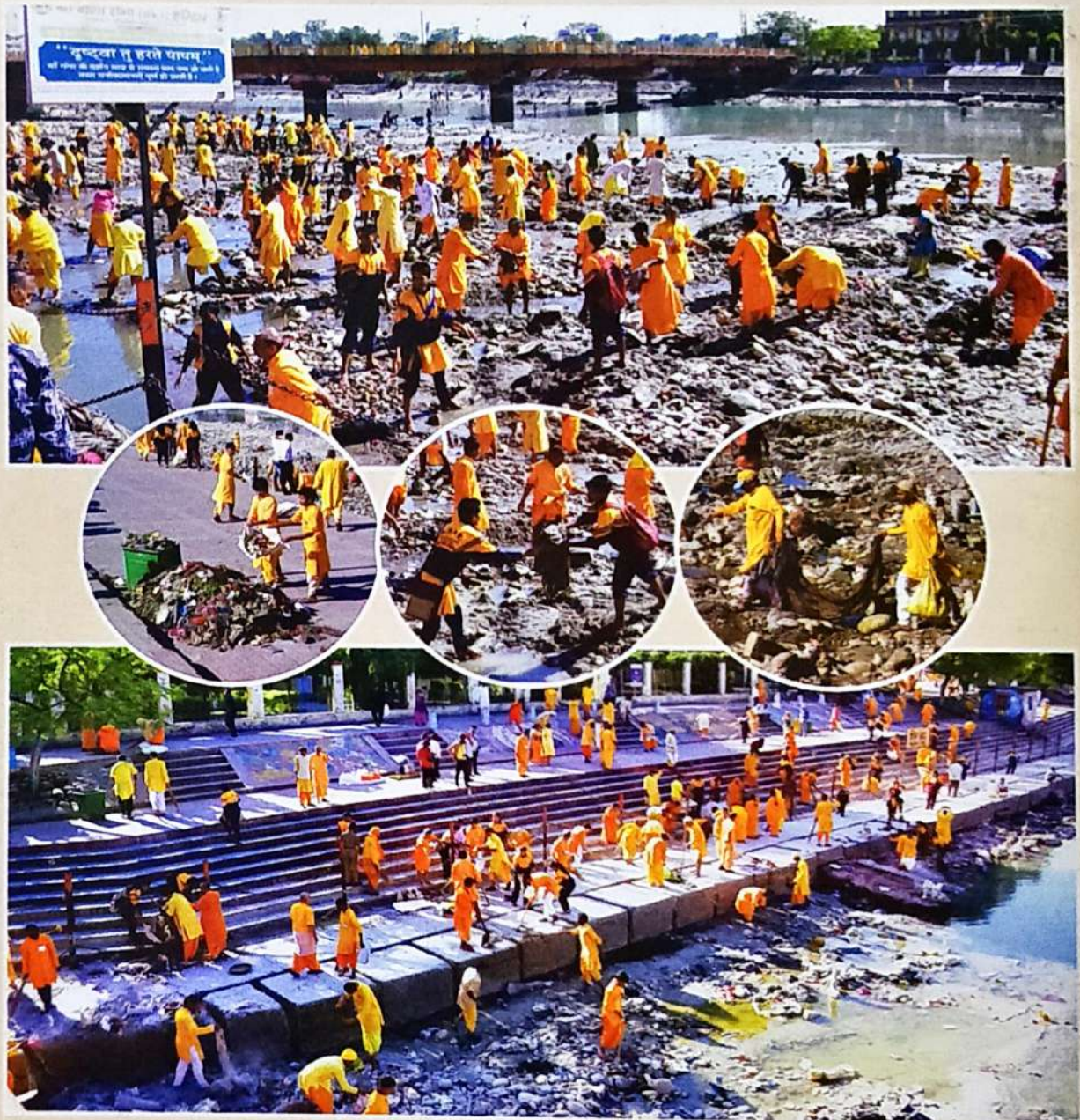
अखिल विश्व गायत्री परिवार द्वारा संचालित निर्मल गंगा जन अभियान के अंतर्गत
हर की पैड़ी—हरिद्वार में हजारों गायत्री परिजनों द्वारा महाश्रमदान

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक—मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा—281003 से प्रकाशित। संपादक—डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष- 0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.— 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
फैक्स--0565 2412273 ईमेल-- ajsansthan@awgp.org